जो लोग विनष्ट करते हैं, उन दुर्वृत्ति लोगोंका मरण ही वाञ्छनीय है। मरीचादि मुनिगणने, ध्रुवके यह सुनीतिपूर्ण वाक्य श्रवण कर, उन्हें इस प्रकार यथार्थ उत्तर दिया था। प्रथमतः मरीचि बोले, अहे बालक! तुमने जो, जो पूछा, मैं उसीके अनुसार कहता हूं, मैं मिथ्या नहीं कहता; नारायणकी चरणाराधना न करनेसे पद किस प्रकार पाओगी? अत्रि बोले, गोविन्दके चरणकमलका रजोमधु आस्वादन न करनेसे, मनोरथ-पथके अतीत स्फीत पद कोई भी प्राप्तकर नहीं सकता। अङ्गिरा बोले, जो व्यक्ति, कमलापतिके कमनीय चरणकमल-युगलका ध्यान करते हैं, सर्व्वसम्पत्तिपद ही उनसे अदूर हैं। पुलस्त्य बोले, ध्रुव! जिनके स्मरणमात्रसे महापातकसमूह भी विनाशको प्राप्त होता है, वह विष्णु सभी दे सकते हैं। पुलह बोले, प्राज्ञगण जिनको प्रकृति पुरुषके परवर्ती परम ब्रह्म कहते हैं, जिनकी माया द्वारा ही विश्वब्रह्माण्ड परिव्याप्त है, वह अच्युत ही सब दान कर सकते हैं। क्रतु बोले, जो यज्ञपुरुष, जगतके अन्तरात्मा और सर्व्वव्यापी हैं, वह जनार्द्दन प्रसन्न होनेसे क्या नहीं दे सकते? वसिष्ठ बोले, हे राजपुत्र! जिनकी भ्रूभङ्गीमात्रसे अष्टसिद्धि प्राप्त होती हैं, उन्हीं हृषीकेशकी आराधना करनेसे मुक्ति भी अदूरवर्त्तिनी है। ध्रुव बोले, हे मुनीश्वरगण! आप लोगोंने विष्णुकी आराधना सम्बन्धमें यथार्थ आदेश किया है; परन्तु किस प्रकार उन भगवानकी आराधना करना होगी, उस विधिका भी उपदेश कीजिये। मुनिगण बोले, अवस्थान, गमन, स्वप्न, जागरण, शयन और उपवेशन सभी अवस्थामें सर्व्वदा नारायणका जप करना। चतुर्भुज विष्णुका ध्यान करता हुआ वासुदेवात्मक द्वादश मन्त्र द्वारा विष्णुका जप करके कौन सिद्धिप्राप्त नहीं हुआ? पुष्प-सन्निभ, पीत-वसन-परिधान अच्युतको चणकाल सर्व्वस्वरूपमें बोध कर सकनेसे जगतमें किसकी सिद्धि नहीं हुई? वासुदेव-जप करनेसे बहुपुत्र, कलत्र, बहुमित्र, राज्य, स्वर्ग और मुक्ति—निस्सन्देह यह सब पाये जाते हैं। विघ्न और दारुण यमदूत लोग वासुदेव-जपासक्त पापी लोगोंको भी स्पर्श नहीं कर सकते। भविष्यतमें महा समृद्धिसम्पन्न, तुम्हारे पितामह वैष्णव मनुने भी राज्याभिलाषी होकर इसी महामन्त्रकी उपासना की थी। हे वत्तम! तुम भी यही मन्त्र अवलम्बनपूर्व्वक वासुदेवपरायण हो, शीघ्र ही इच्छानुरूप सम्पत्तिको प्राप्त होगी। सब महात्मा मुनीश्वर लोग यह कहकर अन्तर्हित हुए। ध्रुवने भी विष्णुमें समर्पितहृदय होकर तपस्याके लिये गमन किया।

एकोनविंश अध्याय समाप्त ॥ १९ ॥

विंश अध्याय।

ध्रुवकी तपस्या और विष्णुका आविर्भाव।

विष्णुपारिषद्द्वयने कहा, हे द्विज! उस वनसे निर्गत होकर उत्तानपादनन्दनने यमुनातीरके महत् रमणीय मधुवनमें गमन किया। पवित्र मधुबन, भगवान् जनार्द्दनका आदि स्थान है; पापिष्ठदेही भी वहां जानेसे निश्चित ही निष्पाप होते हैं। ध्रुवने वासुदेवाख्य निरामय परमब्रह्म जप करते करते ध्याननिश्चललोचनसे सब पदार्थको तन्मय (विष्णुमय) देखा। उन्होंने देखा, कुल दिङ्मण्डलमें हरि हैं; सूर्य्यकिरणजालमें हरि हैं; हरि, बनमें शृगाल, मृग, सिंहादि स्वरूपमें अवस्थित हैं। भगवान् हरि, जलमें मत्स्य कूर्म्मादि रूपमें अवस्थित हैं। हरि, राजाओंकी घुड़शालमें अवस्थित हैं। हरि, पातालमें अनन्तरूपसे और गगनमें अनन्त नामसे विराजमान हैं। हरि, एक होकर भी अनन्त रूपभेदमें अनन्तत्वको प्राप्त हुए हैं। देवता प्रभृतिमें वास करते हैं, इसलिये वह वासुदेव हैं, देवता प्रभृति सब उनमें वास करते हैं, इसलिये वह वासुदेव हैं, और वासनावशसे अर्थात् अविद्या सङ्गमें सर्व्वत्र देवन अर्थात् क्रीड़ा करते हैं, इसलिये उनका नाम वासुदेव है। इन सर्व्वव्यापक भगवानका नाम विष्णु है, विषधातुसे अर्थ व्याप्ति है, इनके विष्णु नामसे विषधातुका अर्थ सफल हुआ है। वही सर्व्वत्रस्थित परमेश्वर, सर्व्व-इन्द्रियके ईश्वरत्व प्रयुक्त 'हृषीकेश' हुए हैं। महाप्रलयमें भी उनके भक्तगण च्युत नहीं होते, इसलिये अखिल लोकमें यह एक सर्व्वग अव्यय पुरुष अच्युत कहे जाते हैं। वह इस चराचर निखिल विश्वको आत्मलीलाक्रमसे स्वरूपसम्पत्ति द्वारा भरण करते हैं, इसलिये वह जगत्में 'विश्वम्भर' हैं। इस हेतु नियमतः पुण्डरीकाक्ष ही केवल द्रष्टव्य हैं, और कोई नहीं, अतएव विष्णुपदके सिवा ध्रुवकी दोनो आंखोंमें और कुछ भी निपतित नहीं होता था। उनके कान भी, मुकुन्द, गोविन्द शब्दके सिवा और हे दामोदर! हे चतुर्भुज! इस प्रकार शब्दके अतिरिक्त और कोई शब्द ही नहीं ग्रहण करते थे। उनके शङ्खचक्र तिलकाङ्कित दोनो हाथ, गोविन्दचरणपूजाका प्रयोजनीय कर्म्म और गोविन्दके प्रिय कर्म्मके सिवा और कोई काम नहीं करते थे। ध्रुवका चित्त दूसरी सब चिन्ता त्याग करके अप्रतिहतभावसे हरिके चरणद्वयकी चिन्ता करते करते क्रमसे निश्चलत्वको प्राप्त हुआ। विपुलतपा उन ध्रुवके विष्णुरचित चरणद्वय विष्णुमन्दिर प्राङ्गण परित्याग करके अन्यत्र विचरण नहीं करते थे। मौनावलम्बी महासार तपोनिष्ठ ध्रुवने अपने वाक्यको हरिगुणमें आसक्त किया। ध्रुवकी रसना, केवल कमलाकान्तका नामामृतरस पान करती, और रसमें उसकी स्पृहा

नहीं थी। उनकी घ्राणेन्द्रिय, केवल पद्मा-मोदप्रमोदित, श्रीविष्णु पदयुगल आघ्राण करती, दूसरा गन्ध घ्राण नहीं करती थी; क्योंकि, उनकी घ्राणेन्द्रिय, हरिपदकमल-गन्धसे परिपूर्ण थी। भूपतिपुत्र ध्रुवकी त्वगिन्द्रियने, विष्णुप्रतिमाके पदद्वय स्पर्शकर-नेसे ही यावतीय सुखस्पर्श वस्तुका स्पर्शसुख प्राप्त किया था। ध्रुवकी इन्द्रियगण, परम-सार दामोदरसे अपने अपने विषयकी श्रद्धा-दिका आश्रय पाकर कृतार्थ हुईं। त्रिभुव-नोद्दीपक ध्रुवतपस्यारवि उदित होनेसे चन्द्र, सूर्य्य, अग्नि और ग्रहनक्षत्रादिका समग्र तेज विलुप्त हुआ। इन्द्र, चन्द्र, वायु, वरुण, यम, कुवेर, हुताशन और नैऋतीश्वर अपने अपने पदके लिये शङ्कित हुए। ध्रुव, पीछे उनका अधिकार ग्रहण करेंगे, इस चिन्ताके प्रावल्यसे वसुप्रमुख अन्यान्य विमा-नचारी देवगण भी सातिशय भीत हुए। ध्रुव, भूतलमें जहां जहां पदक्षेप करते, पृथिवी, उसी उसी स्थानमें ही उनकी भाराक्रान्ता होकर नत होती। थोः! उनके भयसे ही उनका अङ्ग-सङ्गी जल-राशि जाड्य परित्याग करके प्रशस्त-रस-सम्पन्न हुआ। और अन्यत्रस्थित जल पैरके बराबर हो गया। प्रसिद्ध रूप-सम्पन्न जितना तेज है, अर्थात् तेजस्वी जग-त्में विद्यमान है, तपस्तेजः प्रभावसे, ध्रुवको वह सब दिखाई दिया। क्या आश्चर्य है! जहां वायुका स्पर्श नहीं होता, ऐसे किसी भी दूरदेशका स्पर्श भी वह आत्मत्वगिन्द्रिय द्वारा सदा अनुभव कर सके। ध्रुवकी आराधनासे कृतसङ्कल्प होकर (ध्रुव जब चाहते) शब्द-गुणसम्पन्न आकाशका अशेष शब्दसमूह, उनके कर्णगोचर होता। ध्रुवने प्रतिदिन पञ्चभूतसे आरा-धित होकर भी गोविन्दमें चित्त अर्पणपू-र्वक तपस्याको ही परमपदार्थ माना। वह राजनन्दन, कौस्तुभ-शोभितवक्षस्थल, पीत-कौशेयवसन-परिधान गोविन्दके ध्यान प्रभावसे, निखिल विश्व ब्रह्माण्डको तेजोमय अवलोकन करने लगे। ध्रुवकी तपस्या देखकर, सभय इन्द्र यह प्रवल चिन्ता करने लगे, "ध्रुव, यदि हमारे पदकी आकाङ्क्षा करे, तो निश्चय ही हरण करेगा, अप्सरागण, संयमियोंका संयम भङ्ग कर सकती हैं सही, किन्तु युवागणके प्रति ही उनका प्रभुत्व है, बालकपर तो उनका प्रभुत्व नहीं है, मैं क्या करूं! तपस्वियोंके तपोभङ्गमें काम क्रोध ही व्यक्ति मेरे साहाय्यकारी हैं; किन्तु यह ध्रुव बालक है, इसपर तो वह प्रभुत्व कर नहीं सकेंगे। इस बालकपर ममता प्रकाश कर सकें, ऐसा उपाय मेरे पास एकमात्र है। बालक ध्रुवके भयके लिये भीषणाकृति भूतस्त्री वहां भेज दूं। भूतसे भय पाकर, बालकपनसे वह ध्रुव, निश्चय ही तपस्या त्याग करेगा।" इन्द्रने इस प्रकार निश्चय करके ध्रुवके पास भूतसमूह भेजा। एक भूतका सर्व्वाङ्ग मालकी तरह,

गरदन ऊंटकी तरह लम्बी और दन्तपंक्ति देखकर डर लगता था, वह उन बालकके प्रति दौड़ा। व्याघ्रके समान भीषणानन, हाथीके समान उच्चदेह-सम्पन्न एक भूत विकटानन पसारकर बारंबार गर्ज्जन करते करते उन बालककी ओर दौड़ा। कोई विकटदंष्ट्रा-सम्पन्न भूत कदर्य्यमांस भोजन करता हुआ सक्रोध अवलोकनपूर्व्वक तर्ज्जन गर्ज्जन करके ध्रुवके प्रति दौड़ा। कोई भूत, महावृषभरूपी होकर अति तीक्ष्णशीषके अगले भाग द्वारा उच्च तटभूमि विदीर्ण करता हुआ और खुरके अगले भाग द्वारा भूतल विशीर्ण करता करता ध्रुवको देख गर्ज्जन करने लगा। कोई भूत, फणा-विस्तार-भीषण सांपका आकार धारण करके अति चञ्चल दोनो जीभ निकाल निकालकर उनके सामने तेज प्रकाश करने लगा। कोई भूत, महिषाकृति होकर सींगके अगले भाग द्वारा पर्व्वत-समूह विक्षिप्त करता हुआ भूतलमें लाङ्गल-ताड़ना और निश्वास परित्याग करता करता वेगसे ध्रुवके निकटवर्त्ती हुआ। दावानलदग्ध खजूरके वृक्षकी तरह उरुदय-सम्पन्न कोई भूत, मुंह फैलाकर उन्हें भय दिखाने लगा। एक भूतका केशपाश मेघसे संहृष्ट होता था, पिङ्गलवर्ण नयन दोनो कोटर-निमग्न, और उदर सुदीर्घ और कृश वह भी ध्रुवको भय दिखाने लगा। दक्षिण हाथमें कृपाण, वाम हाथमें नरकपाल सम्मुख कोई भूत, प्रचण्ड सिंहनाद करता हुआ उन बालकके प्रति दौड़ा। कोई भूत, किलकिला शब्द करता करता विशालवृक्ष ग्रहणकर, दण्डधर कालकी तरह उनके सामने आया। कोई भूत, अन्धकारका अभिसारमन्दिर, शमनकन्दरसदृश विपुल वदन-कुहर पसारकर उनके पास आया। कोई भूत उल्लूका रूप धर हृतकम्प-जनक अति दारुण फुफकार शब्द द्वारा बालक ध्रुवको भय दिखाने लगा। कोई यक्षिणी किसीका रोता हुआ बालक लाकर उदरसे उसका रुधिर पान करती, शृगालकी तरह उसकी अस्थि खाने लगी और कहने लगी, मैं इस समय प्यासी हुई हूं, ध्रुव! इस बालकका रुधिर जिस तरह पी रही हूं, इस अस्थिको चबाकर तुम्हारा रक्त भी इसी तरह पिऊंगी। किसी यक्षिणीने, तृणादारु लाकर चारो ओर विक्षा दावानल प्रज्ज्वालित किया और वात्या द्वारा उसको वह विशेषरूपसे बढ़ाने लगी। किसी यक्षिणीने, बेताली रूप अवलम्बन करके गिरितरुश्रेणी तोड़कर ध्रुवको अतीव विकम्पित करनेके लिये गगन मार्गको घेर लिया। अपर यक्षिणी, सुनीतिरूप अवलम्बन कर, दूर होसे ध्रुवको देख अति दुःखार्त्ताकी तरह छातीमें कराघात करती हुई बारंबार रोने लगी और अति कारुण्यपूर्ण वात्सल्यभाव ऐसा प्रकाश-

करती हुई, बहुत मायामय चटपटी बात कहने लगी. "शरणागतवत्सल! वत्स! ध्रुव! हाय तुम्हीं मेरे एक मात्र रक्षक हो, हाय मृत्यु मुझे मारनेकी अभिलाषी हुई है, मैं मरती हूं, मेरी रक्षा करो, रक्षा करो। तुमको देखनेके लिये चिन्ता कातर हो मैंने ग्राम ग्राम, नगर नगर पथ पथ, बन बन, आश्रम आश्रम, पर्व्वत पर्व्वत भ्रमण किया है। अरे बालक ध्रुव! जिस दिनसे तू तपस्याके लिये वहिर्गत हुआ है, मैं भी तुझे देखनेके लिये उसी दिनसे ही बाहर हुई हूं। बालक! तू जिस तरह सपत्नीके जिन जिन दुर्व्वाक्योंसे पीड़ित हुआ है, मैं भी उसके वचनानलसे उसी प्रकार अतिशय व्यथित हुई हूं। इस समय न मैं सोती हूं, न जागती हूं, न भोजन करती हूं, न पानी पीती हूं: मैं इस समय तेरे विरहकी योगिनीकी तरह केवल तेरी ही चिन्ता करती हूं। नयनमें निद्रा भी नहीं है, यदि निद्रा आवे, तो मैं अभागिनि, अपना सर्व्वप्रकार आनन्ददायक तेरा मुंह स्वप्नमें भी देख सकूं। बेटा! तुम्हारी विरहकातरा मैं तापपरिहारकी अभिलाषिणी होकर तेरे मुखके समान जान उदीयमान चन्द्रको भी अवलोकन नहीं करती। कोकिलकी काकिली रव, तुम्हारे ही अलापके तुल्य है, यह जानकर अलकगुच्छसे कर्णकुहर आवृत कर रखती हूं, कि कोकिलका शब्द न सुनूं। ध्रुव! अतिमात्र सन्तप्त होकर किसी स्थानमें विश्राम करके बैठकर भी तेरे अङ्गस्पर्श की तरह मधुर जानकर मैं मलयानिलका सेवन नहीं करती। ध्रुव! मैंने राजपत्नी होकर भी तेरे लिये कौन देश, कौन नदी, और कौन पर्व्वत पदव्रजसे अतिक्रम नहीं किया है? मैं सब स्थानको ध्रुवहीन देखकर अन्ध हो गई हूं, ध्रुव! इस समय तू ही मेरी अन्धेकी लकड़ी होकर रक्षा कर। हे नरश्रेष्ठ! कहां तुम्हारा वह सुकोमल अङ्ग और कहां कठिनाङ्ग पुरुषगणसाध्य यह कठोर तपस्या!" वत्स! इस पापनिवर्त्तक तपस्याके प्रभावसे तुम राजनन्दन होनेकी अपेक्षा अधिक और क्या क्या पाओगे? बालक! इस वयसमें तू बालोचित क्रीड़नक ले दूसरे समवयस्क शिशुगणके साथ दिन रात खेलता। फिर कैशोर वयःक्रम प्राप्त होनेपर अध्ययनमें अभिनिविष्ट होकर सर्व्वविद्यामें पारदर्शी होता। इसके उपरान्त यौवनको प्राप्त होकर इन्द्रियार्थसमूह कृतार्थ कर बहुत स्रक्चन्दनवनितादि भोग करता। तब धर्म्मवत्सल गुणवान् बहुत पुत्र उत्पादन होनेके बाद अपनी राज्यलक्ष्मी उन-लोगोंको अर्पण कर फिर तपस्या करता। इस बालक वयसमें तपस्यामें प्रवृत्त होनेमें, कितना श्रम है। घुटनेको आग सबके पैरकी अंगूठेमें है, फिर शिरतक उठनेमें कितना विलम्ब लगता है। अत्र विजित, अपधा-

मत और भ्रष्ट इन तीन व्यक्तिमें ही कोई व्यक्ति तपस्या कर सकता है, किन्तु तुम उनमें कौन व्यक्ति हो? अपमानित व्यक्तिका तपस्या करना उचित है।" यह बात सुनकर ध्रुव, दीर्घ उष्ण निश्वास परित्याग करके पुनः हृदयमें हरिकी चिन्ता करने लगे। माताके साथ बात न करके और भूतका भय परित्यागकर, ध्रुव, फिर अच्युतध्यानपरायण हुए। बहु भीषण-भूषण-भूषित भूतसंघगणने ध्रुवको भय दिखाते दिखाते अपनी चारो ओर सूर्य्यमण्डलके परिवेषवत् दीप्यमान सुदर्शनचक्र देखा। ध्रुवकी राक्षसगणके हाथसे रक्षा करनेके लिये भगवान् नारायणने ही इस चक्रकी व्यवस्था की थी। भूतावली, चतुर्दिक् वेष्टन करके ध्रुवरक्षणतत्पर ज्वालामालासङ्कुल अत्युज्ज्वल तीव्र सुदर्शनचक्र देखकर और अतीव स्थिरचेता, गोविन्दमें अर्पितचित्त हो, जैसे पृथिवी भेद करके उगता हुआ तपोवृक्षका अङ्कुर, उस ध्रुवको ध्रुवनिश्चय देखकर भूतावलीने ही भय पाया! तब वह लोग विफलमनोरथ हो ध्रुवको नमस्कार करके यथास्थानको प्रस्थानकर गये। जैसे गर्जन करता हुआ आकाशव्यापी जलदजाल, अल्पमात्र पवन चलनेपर भी विफल होता है, अर्थात् कहींका कहीं उड़ जाता है। हे द्विज! फिर भीतिग्रस्त सब देवता इन्द्रके साथ परामर्श करके शीघ्र जाकर ब्रह्माके शरणापन्न हुए। इन्द्रादि देवगणके ब्रह्माकी स्तुति प्रणति करनेपर, ब्रह्माने उन लोगोंके आगमनका कारण पूछा। बातका अवसर देखकर उन लोगोंने कहा, "हे विधातः! महातेजा उत्तानपाद-तनयकी कठोर तपस्याके तेजसे सब त्रैलोक्यवासी सन्तप्त हुए हैं। हे तात! ध्रुवके मनमें क्या है। वह महातपाः हमलोगोंमें किसका पद हरण करनेके अभिलाषी हैं, वह हम लोग अच्छी तरह नहीं जानते।" देवताओंके इस प्रकार कहनेपर, चतुराननने हंसकर उन ध्रुवभीतचेता देवगणसे कहा, "देवगण! नित्यपदाभिलाषी ध्रुवसे तुमको भय नहीं है। निश्चिन्त होकर जाओ; तुम लोगोंके पदकी वह इच्छा नहीं करते। उन भगवद्भक्तसे किसीको भी कहीं डरनेकी आवश्यकता नहीं है। जो निश्चय विष्णुभक्त होता है, वह पर सन्तापदायी नहीं होता। यह विष्णु-आराधना सम्पूर्ण होनेपर, ध्रुव विष्णुसे अपने अभीष्टको प्राप्त होकर, तुम लोगोंके पदको और भी दृढ़तर करेंगे।" देवगण ब्रह्माप्रयुक्त यह बात सुन अत्यन्त हृष्ट होकर ब्रह्माको प्रणाम करके अपने अपने स्थानको गये। फिर नारायण देव, बालक ध्रुवको दृढ़चित्त और अनन्यभक्त देखकर गरुड़रथसे वहां आकरके बोले, बालक! अनेक दिनसे तपस्याका कष्ट पाते हो, इस तपस्यासे निवृत्त हो। हे

महाभाग ! मैं प्रसन्न हुआ हूं ; हे सुव्रत ! तुम वरकी प्रार्थना करो । ध्रुवने यह अमृतायमान वचन सुन नयनयुगल खोलकर इन्द्र नीलमणिका ज्योतिःपटल अवलोकन किया । उन्होंने देखा, आकाश और पृथिवीका सरोवर मानो नवविकसित नीलोत्पल श्रेणी द्वारा शोभा पा रहा है ! उस समय ध्रुवने देखा, द्यावा-पृथिवीके अन्तर्गत निखिल स्थान ही लक्ष्मीदेवीके इन्दीवरविनिन्दी नयनके कटाक्षधारापातसे परिपूर्ण हुआ है । विद्युत्शोभितमध्य नवनील जलदजालके समान शोभासम्पन्न पीताम्बर कृष्णको उन्होंने सामने देखा । सुवर्णरेखाङ्कित निकषपाषाणके (कसौटी पत्थरके) समान, गोदमें-सुवर्णगिरि-सुमेरु, अनन्त नील नभोमण्डल जैसा दिखाई देता है, ध्रुवने उस समय पीताम्बर गरुड़ध्वजको भी उसी रूपमें अवलोकन किया । ध्रुवने उस समय पीताम्बरपरिधान हरिको चन्द्रविभूषित गगनमण्डलकी तरह देखा । दुःखित शिशु सन्तान, जैसे बहुत दिनोंके बाद पिताको देखनेसे, फूट फूटकर रोता है, शिशु ध्रुव भी उस समय उन जगत्-पिताके अवलोकन मात्रसे दण्डवत् प्रणाम करके दुःख धारण करते हुए चारो ओर लोट पोटकर रोने लगे । नारद, सनक, सनन्द और सनत्कुमार प्रभृति अन्यान्य योगिगणद्वारा संस्तुत योगीश्वर चक्रपाणिके नयन-नलिनद्वय कारुण्यवारिसलिलसे सिक्त हुए ; उन्होंने हाथ धरकर ध्रुवको उठाया । फिर अस्त्रधारण प्रयुक्त सुकठोर कर युगल द्वारा हरिने ध्रुवका धूलिधूसरित अङ्ग स्पर्श किया । उन देव देवके स्पर्शमात्रसे ही ध्रुवके मुखसे सुसंस्कृत वाक्य निर्गत हुआ ; तब वह नारायणका स्तव करने लगे ।

विंश अध्याय समाप्त ॥ २० ॥

एकविंश अध्याय ।

ध्रुवकृत विष्णुस्तव और ध्रुवकी उन्नति ।

सर्वसृष्टिकारी हिरण्यगर्भरूपी, हिरण्यरेता निर्मल-ज्ञान-प्रदाता आपको नमस्कार करता हूं । भूत-संहारकारी हर-स्वरूपी महाभूतात्माभूतपति आपको नमस्कार करता हूं । हे स्थितिकारी विष्णु-स्वरूप, महाभार-सहिष्णु, तृष्णाहर प्रभु कृष्ण आपको नमस्कार करता हूं । दैत्य-गण महावनमें दावानलस्वरूपी आपको नमस्कार है । हे दैत्यवृक्षसमूहके लिये कुठार स्वरूप शार्ङ्गपाणि ! आपको नमस्कार करता हूं । हे गदाधर ! कौमोदकी गदा आपके कराग्रमें उद्यत है, हे नन्दक-खड्गधारिन् महादानव-विनाशक ! आपको नमस्कार है । आद्य वराहरूपसे पृथिवी उद्धारकारी चक्रधार परमात्मा श्रीपति हैं, आपको नमस्कार करता हूं । 'मत्स्यादि

रूपधारी आपको नमस्कार है; जिनका वक्षस्थल कौस्तुभमणि-विभूषित, उन्हीं आपको नमस्कार है। वेदान्तवेद्य आपको नमस्कार है, श्रीवत्सधारी आपको नमस्कार है। सगुण, निर्गुण और गुणस्वरूप आपको नमस्कार है। हे पाञ्चजन्यधारी पद्मनाभ! आपको नमस्कार है। हे देवकीनन्दन वासुदेव! आपको नमस्कार है। आप प्रद्युम्न हैं, आपको नमस्कार है, आप अनिरुद्ध, आपको नमस्कार है, आप कंसविनाशक, आपको नमस्कार है, आप चाणूरमर्द्दन, आपको नमस्कार है, हे दामोदर! हृषीकेश! गोविन्द! अच्युत! माधव! उपेन्द्र! कैटभारे! मधुसूदन! अधोक्षज! हे नरकहारिन्! पापहारिन्! नारायण! हे वामन! आपको नमस्कार है। हे शौरे! हे हरे! आपको नमस्कार है। अनन्त, अनन्तशायी, रुक्मगर्व्वखर्व्वकारी रुक्मिणीपति, आपको नमस्कार है। हे शिशुपालविनाशन! दानवारे! असुरघ्नो! हे मुकुन्द! हे परमानन्द! हे नन्दगोप-प्रिय! आपको नमस्कार है। हे दनुजेन्द्रनिसूदन! पुण्डरीकाक्ष! आपको नमस्कार है! वेणुवादनकारी गोपालरूपी आपको नमस्कार है। आप गोपीवल्लभ,—केशिविनाशन और गोवर्द्धन गिरिधर हैं, आप ही राम, रघुनाथ, राघव हैं, आपको बारंबार नमस्कार करता हूं। हे रावणारे! हे विभीषणरक्षक! हे रणाङ्गण विचक्षण, जयस्वरूप अज! आपको नमस्कार। आप क्षणादि कालस्वरूप, आप नानारूपधर, आप शार्ङ्गधर, गदाधर, चक्रपाणि, आप दैत्यसमूहके विनाशकारी, आपको नमस्कार। हे बल! हे बलभद्र! हे इन्द्रप्रिय! हे बलियज्ञप्रमथन! हे भक्तवरप्रद! आपको नमस्कार है। हे हिरण्यकशिपु-वक्षःस्थलविदारक! समरप्रिय! गो-ब्राह्मणके हितकारी ब्रह्मण्य-देव! आपको नमस्कार करता हूं। धर्मरूपी आपको नमस्कार है, सत्त्वगुणरूपी आपको नमस्कार है, आप सहस्रशीर्षा परम पुरुष हैं, आपको नमस्कार है! हे सहस्राक्ष! हे सहस्रपाद! हे सहस्रकिरण! हे सहस्रमूर्त्ते! यज्ञपुरुष श्रीकान्त! आपको नमस्कार है। आपका स्वरूप वेद-प्रतिपाद्य, आप वेदप्रिय, वेदवक्ता और वेदस्वरूप, आप सदाचारपथके प्रवर्त्तक, आपको नमस्कार करता हूं। हे वैकुण्ठ! आपको नमस्कार है। हे वैकुण्ठवासिन्! आपको नमस्कार है। हे गरुड़वाहन विष्टरश्रवा! आपको नमस्कार। हे विश्वक्सेन! जगन्मय! जनार्द्दन! आपको नमस्कार है। हे सत्य! सत्यप्रिय! त्रिविक्रम! आपको नमस्कार है। हे ब्रह्मवादिन्! माया-मय केशव! आपको नमस्कार है, आप तपस्या स्वरूप और तपस्याके फलदाता, आपको नमस्कार है। आप स्तव योग्य, स्तवस्वरूप और भक्तस्तवपरायण आप श्रुति स्वरूप और श्रोताचारप्रिय

आपको नमस्कार है। अण्डज-प्राणिस्वरूपी आपको नमस्कार, स्वेदज प्राणिरूपी आपको नमस्कार और जरायुज और उद्भिज्ज प्राणिस्वरूपी आपको नमस्कार। आप देवगणमें इन्द्रस्वरूप, ग्रहगणमें सूर्य्य, आप लोक समुदायमें सत्यलोक, समुद्र गणमें चीर समुद्र हैं। आप नदी समूहमें-गङ्गा, सरोवरनिकरमें मानसरोवर हैं। आप पर्व्वतगणमें हिमालय,धेनुवृन्दमें कामधेनु हैं। आप धातुओंमें सुवर्ण, पाषाणसमूहमें स्फटिक, आप पुष्पसमूहमें नीलपद्म, गुल्म-वृक्षमें तुलसी, आप सर्व्वपूज्यमें शालग्राम-शिला, मुक्तिक्षेत्रमें काशी, तीर्थश्रेणीमें प्रयाग, वर्णमें श्वेतवर्ण, आप द्विपाद प्राणि-योंमें ब्राह्मण हैं; हे ईश्वर! आप पक्षियों-गरुड़, लौकिक प्रयोजनीय वस्तुमें वाक्य, सब वेदमें उपनिषद्, मन्त्र समूहमें प्रणव; आप अक्षर मालामें अकार, यज्ञकर्त्ता-गणमें चन्द्र, आप प्रतापशालियोंमें अग्नि, सहिष्णु गणमें सर्व्वंसहा हैं। आप दातृगणमें पर्जन्य, पवित्र वस्तुओंमें जल, आप निखिलअस्त्रोंमें धनु, वेगसम्पन्नोंमें वायु, आप इन्द्रिय वर्गोंमें मन, अभय सूच-कोंमें हस्त, आप व्यापक पदार्थोंमें आकाश, निखिल आत्माओंमें परमात्मा हैं; हे देव! आप सर्व्व नित्य कर्म्मोंमें सन्ध्योपा-सना, यज्ञसमूहमें अश्वमेध, आप यावत दानोंमें अभयदान, सम्पूर्ण लाभोंमें पुत्र-लाभ; आप ऋतुगणमें बसन्त, आप युग-समूहोंमें सत्ययुग; तिथिवृन्दमें कुहू (अमावस्या विशेष) आप नक्षत्रगणमें पुष्या, सर्व्व पर्व्वोंमें संक्रान्ति, आप योग संहतिमें व्यतीपात, तृणराजिमें कुश, आप चतुर्व्वर्ग फलमें मोक्ष हैं। हे अज! सर्व्व बुद्धियोंमें आप धर्म्मबुद्धि हैं। आप सर्व्व वृक्षोंमें अश्वत्थ, लताओंमें सोमवल्ली, आप सर्व्व पवित्र साधनोंमें प्राणायाम, आप सब शिवलिङ्गोंमें सर्व्वाभीष्टदायी श्रीमान् विश्वेश्वर, आप आत्मीयवर्गोंमें पत्नी, समग्र वस्तुओंमें धर्म्म हैं, नारायण। आपके व्यतीत चराचर जगतमें कुछ भी नहीं है; आप माता, आप पिता, आप सुहृद, आप उत्तमधन, आप सुख सम्पत्ति हैं; हे जीवने-श्वर आप आयु; जिसमें आपका नाम है, वही कथा कथा है; जो आपमें अर्पित है, वही मन मन है; जो आपके लिये किया जाता है, वही कर्म्म कर्म्म है और आपको ध्यानात्मक तपस्या ही, तपस्या है। जो आपके लिये व्यय होता है, धनाढ्योंका वही धन विशुद्ध धन है; हे जिष्णो! आप-की जिस समय पूजा होती है, वही समय सफल है! जितने दिन आप हृद-यमें रहते हैं, उतने दिन ही जीवित रहना श्रेयस्कर है, आपकी पादोदकसेवासे रोग सब प्रशमको प्राप्त होते हैं। हे गोविन्द! वासुदेव इस नामके स्मरण मात्रसे बहुजन्मा-र्ज्जित महापातकराशि भी तत्क्षणात् विनष्ट होती है। अहि! मनुष्यके जैसा महा-

मोह है ! ओह ! मनुष्यके कैसा प्रमाद है ! वह लोग वासुदेवका आदर न करके और विषयमें भ्रम करते हैं। यह जो दामोदर नाम कीर्त्तन है, यही मङ्गलकर, यही धनार्ज्जन, और यही जीवनका फल है। अधोक्षज भिन्न धर्म्म नहीं, नारायण व्यतिरिक्त अर्थ नहीं, वैष्णव व्यतीत काम नहीं और हरि बिना मुक्ति नहीं। वासुदेवका अर्च्चा न करना; वही परम हानि, वही उपसर्ग और वही परम अभाग्य है। आह! हरिकी आराधना पुरुषको क्या क्या सिद्ध नहीं करती? हरिआराधना, पुत्र, मित्र, कलत्र, अर्थ, राज्य, स्वर्ग, और मुक्ति पर्य्यन्त प्रदान करती है। हरि आराधना पापहरण करती आधि व्याधि विनष्ट करती, धर्म्मवर्द्धित करती, एवं शीघ्र मनोरथ सम्पादन करती है। एकाग्रभावसे भगवच्चरणयुगल ध्यान, अति ही उत्तम; पापीव्यक्ति भी प्रसङ्ग क्रमसे यदि यही ध्यान करे, तो उसका परम हित होता है! एकाग्रभावसे हरिका ध्यान और नामोच्चारण करनेसे, पापीगणका जितना पाप यहांतक, कि महापातक पर्य्यन्त नष्ट होते हैं। जैसे अनलकणा अज्ञानतासे स्पृष्ट होनेपर भी दग्ध करता है, उसी तरह हरिनाम, किसी प्रकारसे भी ओष्ट-पुट संस्पृष्ट होनेसे पाप हरण करता है। जो मनुष्य क्षण कालके लिये भी कमलाकान्तकी एकान्त प्रशान्त चित्त समाधानपूर्व्वक उपासना करते हैं, उनकी लक्ष्मी अचला होती हैं। विष्णुपादोदक पीना ही परमधर्म्म, परम तपस्या और परम तीर्थ है। हे यज्ञपुरुष! जो मनुष्य आपके प्रसादी नैवेद्यको भक्तिपूर्व्वक सेवा करता है, वह महामति निश्चय ही पुरोडाश (यज्ञ चरु) सेवन करता है; अर्थात् प्रधान देवता होता है। जो मनुष्य, विष्णु पादोदक शङ्खमें लेकर तद्द्वारा स्नान करता है, उसे अवभृथ (यज्ञान्त) स्नानका और गङ्गा स्नानका फल होता है। जो मनुष्य तुलसी पत्र द्वारा शालग्राम शिला पूजा करते हैं, वह देवलोकमें पारिजातमाल्य द्वारा पूजित होते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अथवा इतर जातिको भी विष्णुभक्तियुक्त होनेसे सर्व्वोत्तम जानना। जिनको देहमें—बाहुद्वयमें शङ्ख, चक्र अङ्कित, मस्तकपर तुलसीमञ्जरी और अङ्ग गोपीचन्दन द्वारा लिप्त है, उन्हें देखनेसे भी पाप नाश होता है। जो लोग प्रत्यह द्वारकाचक्रसमन्वित द्वादश शालग्रामशिलाकी पूजा करते हैं, वह वैकुण्ठमें सम्मानपूर्व्वक वास करते हैं। जिनके गृहमें नित्य तुलसीकी पूजा होती है, यमकिङ्कर लोग उनके गृहमें कभी नहीं जाते। जिनके मुखमें हरिनाम, ललाटपर गोपीचन्दन और वक्षस्थलमें तुलसीमाला है, यमके अनुचरवर्ग उन्हें छू नहीं सकते; गोपीचन्दन, तुलसी, शङ्ख, शालग्राम, और द्वारकाचक्र यही पांचन वस्तु जिनके गृहमें हैं; उन्हें पापका भय नहीं है।

बिना हरिस्मरणके जो सब क्षण मुहूर्त्त, जो सब काष्ठा, जो सब निमेष अतिक्रान्त होते हैं, उनके इन सब समयकी आयु यम द्वारा अपहृत होती है। कहां ज्वलन्त अग्निस्फुलिङ्ग-सदृश दश्चर हरिनाम और कहां रूईतुल्य महान् पापराशि! परमानन्द मुकुन्द मधुसूदन गोविन्द व्यतीत और किसीको जानता, भजता और न स्मरण करता हूं। इस समय मैं हरि भिन्न किसीको नमस्कार नहीं करता, स्तव नहीं करता, आंखसे नहीं देखता, स्पर्श नहीं करता, गान नहीं करता और हरिमन्दिर व्यतीत नहीं जाता। मैं जल, स्थल, पाताल, अनिल, अनल, पर्व्वत, विद्याधर, सुरासुर, नर, वानर, किन्नर, तृण, स्त्रैण, पाषाण, तरु, गुल्म और लता सर्व्वत्र हीको श्याम कलेवर श्रीवत्स-वक्षःस्थल श्रीकृष्णको अवलोकन करता हूं। आप सबके हृदयवासी साक्षात् साक्षी हैं; आप सर्व्वज्ञ हैं आपके बिना वाह्य और अभ्यन्तरमें मैं और किसीसे अवगत नहीं हूं। शिवशर्म्मन! ध्रुव उस समय यह कहकर विरत हुए। भगवान् नारायण देवने, प्रसन्ननयनसे ध्रुवको कहा, अयि स्थिरमते! विशालाक्ष! निष्पाप! बालक! ध्रुव! मैं तुम्हारे हृदयस्थ मनोरथसे विदित हूं। भो ध्रुव! अन्नसे सब भूतोंकी उत्पत्ति है, वृष्टिसे अन्न उत्पन्न होता है, उसी वृष्टिका कारण सूर्य्य है, तुम सूर्य्यके आश्रय हो। अनवरत गगनमण्डलमें चतुर्द्दिकसे घूर्णमान ग्रह-नक्षत्रादि समग्र ज्योतिश्चक्रके तुम आधार होगे। तुम केन्द्र बनकर वायु-पाश नियन्त्रित कुल ज्योतिर्गणको घुमाते हुए प्रलयतक इसी पदपर अधिष्ठित रहो। मैं पूर्व्वकालमें श्रीमहादेवकी आराधना करके जो इस पदको प्राप्त हुआ था, तुम्हारे तपोबलसे मैंने तुम्हें वह पद प्रदान किया। हे ध्रुव! चतुर्युगतक कोई कोई स्वाधिकार भोग करते हैं, कोई कोई मन्वन्तर कालतक स्वपदपर अधिष्ठित रहते हैं, तुम कल्पान्तपर्य्यन्त यह अधिकार पालन करोगे। वत्स! ध्रुव! दूसरे मनुष्योंकी क्या बात कहूं? मनु भी जिस पदको प्राप्त नहीं हुए, इन्द्रादि देवगणको भी दुर्लभ वह पद मैंने तुमको दिया है। तुम्हारे इस स्तवसे परितुष्ट होकर मैं और सब वर भी प्रदान करता हूं;— तुम्हारी माता सुनीति भी तुम्हारे समीपचारिणी होंगी। जो मनुष्य एकाग्रचित्तसे इस श्रेष्ठ स्तोत्रका त्रिसन्ध्या पाठ करेगा, उसका समस्त पाप नाश होगा। लक्ष्मी उसके गृहमें निश्चल रहेंगी। उसका मातृवियोग न होगा और बन्धुवर्गसे कलह न होगा। यह पुण्ययुक्त ध्रुवकृतस्तुति महापातकविनाशिनी है। और पापियोंकी बात क्या कहें?— इस स्तोत्रके पाठसे ब्रह्मघाती भी पापमुक्त होता है। यह स्तुति महापुण्यसम्पादिनी, महासम्पत्तिदा-

यिनी और महाव्याधिविनाशिनी है। जिस निर्मलचेता मनुष्यको मेरे प्रति परमा भक्ति है, मेरी प्रीतिविधायिनी यह ध्रुवकृत स्तुति वह पाठ करेंगे। मनुष्य सम्पूर्ण तीर्थस्नान द्वारा जो फल पा सकता है, प्रीतिपूर्व्वक यह स्तव पाठ करनेसे उसे वह तीर्थस्नानका फल मिल सकता है। मेरे प्रीतिकर कई स्तोत्र हैं सही; किन्तु इस ध्रुव-स्तुतिके षोड़शांशके एकांशयोग्य भी कोई नहीं है। मनुष्य, परम श्रद्धायुक्त आनन्द-पूर्व्वक यह स्तोत्र श्रवण करनेसे भी सद्यः पापराशिसे मुक्त होता है और महत् पुण्य लाभ करता है। यह ध्रुव-कृत स्तव कीर्त्तन करनेसे, अपुत्रकके पुत्र, निर्द्धनके धन और अभक्तकी भक्ति होती है। इस स्तुति द्वारा मनुष्यको जैसी अभीष्टप्राप्ति होती है, अनेक दान करनेसे नाना व्रत करनेसे भी उस प्रकार अभीष्टप्राप्ति नहीं होती। सर्व्व-कर्म्म परित्याग करके नानाविध पाठ्य त्याग करके यह सर्व्वकामप्रदायिनी ध्रुव कृत स्तुति ही पाठ्य है। श्रीभगवान् बोले, ध्रुव, मनोयोग करो; हे महामते! तुम्हारा यह पद जैसे सम्यक स्थिर होगा, वही हितोपदेश तुम्हें दूंगा;— जहां मुक्तिदाता विश्वेश्वर साक्षात् अवस्थित हैं, मैं इससे पहिले उसी शुभा वाराणसीपुरीमें जानेका अभिलाषी होता हूं। इस काशीमें स्वयं विश्वेश्वर मृत प्राणियोंके कर्णमें कर्म्मनिर्म्मूलनसमर्थ तारकमन्त्र उपदेश करते हैं। यह सर्व्वो-पद्रवदायी संसारदुःखका एकमात्र निस्तारोपाय आनन्दभूमि काशी है। "यह रमणीय यह रमणीय नहीं" इस प्रकारका जो प्रियाप्रिय ज्ञान है, वही दुःख महा-तरुका बीज है, काशीरूप अग्नि द्वारा वह बीज दग्ध होनेसे, दुःखका अवसर कहां? जो प्रधान लब्धव्य है, वह इसी काशीकी सहायतासे मिलता है। यह काशी प्राप्त होनेसे फिर संसारका कष्ट और नहीं मिलता और यह परम निवृत्तिका स्थान है, इसीलिये काशीका नाम "आनन्द-कानन" है। जो पुरुष इस मुक्तिक्षेत्र शिव-जीका "आनन्द-कानन" परित्याग करके अन्यत्र वास करता है, उनका सुखोदय किस प्रकार होगा? काशीमें चाण्डालके घरमें भिक्षाके लिये शराव-हस्तसे फिरना अच्छा है, किन्तु अन्यत्रका निष्कण्टक राज्य भी अच्छा नहीं। मैं विश्वेश्वरकी पूजा करनेके लिये जगद्वन्दनीया विश्वे-श्वर-पूजिता काशीमें वैकुण्ठसे नित्य आता हूं। मुझमें जो त्रिलोकपालिनी परमा शक्ति है, महेश्वर ही उसके कारण हैं, उन्होंने मुझे सुदर्शन चक्र प्रदान किया है। पूर्व्वकालमें मेरे भीतिप्रदाता जालन्धर दैत्यको महेश्वरने अपने पदाङ्गुष्ठसे चक्र बनाकर उससे विनष्ट किया। मैंने नयन-कमल द्वारा प्रभु महेश्वरकी अर्चना करके वह दैत्यचक्रविमर्द्दन सुदर्शनचक्र

लाभ किया है। भूतविद्रावण वह परम सुदर्शनचक्र तुम्हारी रक्षाके लिये पहले-ही प्रेरण किया है, इस समय मैं ही आया हूं। अब मैं विश्वेश्वर-दर्शनको लिये काशी जाऊंगा; आज कार्त्तिकी पूर्णिमा है, आजकी 'यात्रा' बहुपुण्यदायिनी है। जो मनुष्य कार्त्तिक महीनेकी चतुर्द्दशीको उत्तरवाहिनी गङ्गा स्नान करके विश्वे-श्वर दर्शन करते हैं, उनका पुनर्जन्म नहीं होता। हरिने इतना कहकर आनन्द-स्निग्ध ध्रुवको गरुड़ारोहण करा महेश्वरा-धिष्ठिता काशीकी यात्रा की। जनार्द्दन देव, पञ्चक्रोशीकी सीमापर उपस्थित होकर ध्रुवका हस्त धारणपूर्व्वक गरुड़से उतरे। तत्पश्चात् ध्रुवको लेकर मणिकर्णिकामें स्नान और विश्वेश्वर-पूजा करके भगवान नारायणने, ध्रुवके हितकरणाभिलाषसे उनसे कहा, इस अवि-मुक्त क्षेत्रमें यत्नपूर्व्वक शिवलिङ्ग स्थापन करो, इससे त्रैलोक्यस्थापनपुण्यके सदृश तुम्हें अक्षय पुण्य होगा। अन्यत्र एक नियुत शिवलिङ्ग स्थापन करनेसे जो पुण्य होता है, इस काशीमें एक लिङ्ग स्थापनसे वही पुण्य प्राप्त होता है। इस स्थानमें काल पाकर जीर्ण किसी देवालयका जो मनुष्य जीर्णोद्धार करता है, उसके फलका अन्त प्रलयमें भी नहीं होता। जो मनुष्य वित्त-शाठ्य परित्यागकर इस स्थानमें देव-प्रासाद निर्म्माण करा देता है, नियुतयोजन समग्र सुमेरु दानका फल उसे होता है। जो मनुष्य इस जगह कूप, वापी, तड़ाग-शक्त्यनुसार निर्म्माण करा देता है, अन्यत्र इन सबके करनेसे जो पुण्य होता है, तदपेक्षा कोटि गुणाधिक पुण्य उसे लाभ होता है। जो लोग पूजाके हेतु इस काशीमें सुरम्य पुष्पोद्यान निर्म्माण करते हैं, उसके प्रति पुष्पसे सुवर्ण कुसुमापेक्षा अधिक फल होता है। जो मनुष्य इस काशीमें, वेदपाठमन्दिर बनाकर एक वर्ष भोग्य भोज्य द्रव्यके सहित उसे ब्राह्मणोंको दान करता है, उसका पुण्य फल संक्षेपमें श्रवण करो;—समुद्रकी जलराशि कदाचित शुष्क हो जाय, पृथ्वीकी त्रसरेणु भी कदाचित क्षयको प्राप्त हों, तथापि शिवलोकप्राप्त उस मनुष्यका पुण्य क्षय नहीं होता। जो मनुष्य इस काशीमें मठ निर्म्माण कराकर और मठस्थ लोगोंको जीविका निर्व्वाहका उपाय करके, वह मठ तपस्विगणको प्रदान करता है, उसका पुण्य भी पूर्व्ववत है। इस स्थानमें महा-पुण्य सञ्चय करके जो मनुष्य, उसे विश्वेश्व-रमें अर्पण करते हैं, घोर संसारसागरमें उसे पुनरागमन नहीं करना होता। इस जगतमें मेरा "अनन्त" यह नाम कीर्त्तित होता है, परन्तु मुझे भी काशीकी गुणावलीका अन्त नहीं मिला है। अत-एव, ध्रुव! काशीमें यत्नपूर्व्वक धर्म्मकार्य्यका अनुष्ठान करना; काशीमें अनुष्ठित धर्म्मका फल, अक्षय होता है। विष्णुपरिग्रहइस

बोले, गरुड़ध्वजने, ध्रुवको यह उपदेश दे-करग मन किया। ध्रुवने भी वैद्यनाथलिङ्गके समीप लिङ्गस्थापनकर, सुमहत् देवप्रासाद और उसके सम्मुख कुण्ड बनवा विश्वेश्वर-पूजन पूर्व्वक कृतार्थ होकर गृहको गमन किया। मनुष्य, ध्रुवेश्वरकी पूजा और ध्रुव-कुण्डमें स्नानादि जलकृत्य करनेसे भोग-समन्वित होकर ध्रुवलोकको प्राप्त होते हैं। जो लोग ध्रुवका यह परम उपाख्यान पाठ करते हैं अथवा पाठ कराते हैं, वह लोग विष्णुलोक प्राप्त होकर विष्णुके प्रीतिभाजन होते हैं।

एकविंश अध्याय समाप्त ॥ २१ ॥

द्वाविंश अध्याय।

तीर्थमाहात्म्य।

शिवशर्म्माने कहा, हे विष्णुपारिषद्द्वय! यह महापातकनाशन, महाविचित्र, पवित्र, रमणीय ध्रुवोपाख्यान सुनकर मैं तृप्त हुआ हूं। अगस्त्यने कहा, इस प्रकारकी बात शिवशर्म्मा जब कर रहे थे, उस बीचमें ही वायुवेगगामी उनका विमान स्वर्लोकसे पर-माद्भुत महर्लोकमें उपस्थित हुआ। फिर सर्व्वत्र तेजोवृत वह लोक देखकर द्विज शिवशर्म्माने उन विष्णुपारिषद्द्वयसे कहा, यह मनोहर लोक किसका है? तब उन लोगोंने ब्राह्मणसे कहा, हे महामते! स्वर्लोकके बाद परमाद्भुत प्रसिद्ध महर्लोक यही है। तपस्या द्वारा जिनकी पाप-राशि एकदमसे निर्द्धूत हुई है वही कल्पान्तजीवी भृगु प्रभृति ऋषिगण, विष्णुस्मरण द्वारा समस्त क्लेशराशिसे विमुक्त होकर इस लोकमें वास करते हैं। महायोगिगण निर्व्वीज समाधि द्वारा जगत्को तेजोमय अवलोकन कर अन्तमें देवप्रवर हो इस लोकमें वास करते हैं। प्रिये! लोपामुद्रे! भगवत्पारिषद्द्वय इसी प्रकार बात कर रहे थे, इसी बीचमें उस विमानने उन लोगोंको छमाईमात्रमें जनलोकमें उपस्थित किया। जनलोकमें ब्रह्माके मानसपुत्र सन-न्दनादि निर्म्मल योगीन्द्रगण वास करते हैं। यह सभी ऊर्द्धरेताः हैं। अस्खलित-ब्रह्मचर्य्य, शीतोष्णादि सर्व्वद्वन्द्व-विमुक्त, अन्यान्य निर्म्मल योगी भी इस जनलोकमें वास करते हैं। मनोवेगगामी उस विमानने जनलोक अतिक्रम करके तपोलोक उन्हें दिखाया। वैराज देवगण और वासुदेवमें ही जिसका मन अर्पित है या समस्त कर्म्म जिसने वासुदेवको अर्पण किया है, वह सब मनुष्यगण दाह विवर्जित होकर इस तपोलोकमें वास करते हैं। जितेन्द्रिय व्यक्तिगण, निष्कामभावकी तपस्या द्वारा गोविन्दका सन्तोषसाधन करनेपर, अन्तमें इस तपोलोकको लाभ कर वास करते हैं। जो शिलोञ्छवृत्तिसम्पन्न हैं; जो दन्तोलुखलिक हैं; जो सब मुनि अश्म-कुट्ट हैं; जो गलितपत्रभोजी हैं; जो

ग्रीष्ममें पञ्चाग्नितपाः हैं ; वर्षामें अनावृत-भूमिशायी और हेमन्तऋतुमें समग्र या शिशिरऋतुमें अर्द्धेक कालतक जलमें रह-कर रात्रियापन कर तपस्या करते हैं ; जो तपोनिमग्ननिष्ठ मनुष्यगण तृष्णार्त्त होनेपर भी कुशाग्रस्थित जलबिन्दुमात्र पीते हैं और क्षुधित होनेपर भी वायुमात्र भोजन करते हैं ; जो अगले पैरके अंगूठे द्वारा भूतल स्पर्श करके तपस्या करते हैं, जो ऊर्द्धबाहु हैं ; जो सूर्य्यमें अर्पितदृष्टि हैं ; जो एक पैरसे स्थिरभावसे खड़े रहते हैं ; जो दिवसमें निरुच्छ्वास हैं ; जो महीनेके अन्तमें निश्वास परित्याग करते हैं ; जो मासोपवास व्रती हैं ; जो चातुर्म्मास्यव्रती हैं ; जो एक एक ऋतुके समाप्त होनेपर जल-मात्र पान करके रहते हैं ; जो पराग्मा घोपवासी हैं ; जो वर्षके अन्तमें निमेषपातन करते हैं जो वृष्टिधारा-जलमात्र पान करके रहते हैं ; जो स्थाणु-तुल्यताप्राप्त होकर मृगगणके गात्रमर्षण-सुखके हेतु हुए हैं ; जिन लोगोंके जटा-जूटके गहनकोटरमें, पक्षिगणने, घोसला निर्म्माण किया है ; जिनका अङ्ग बल्मीका-वृत है ; जिनका अस्थि-समूह स्नायु द्वारा बद्ध अर्थात् मांसहीन है ; जिनका सब अवयव लताप्रतानसे वेष्टित है; जिनके अङ्गमें सब शस्य कितने ही कालसे उत्पन्न होकर रहे हैं, इत्यादि उत्तम तपःक्लिष्ट देह तपो-धनगण, ब्रह्माके समान आयुःप्राप्त होकर अकुतोभयसे इस तपोलोकमें वास करते हैं।

शिवशर्म्माने विष्णुपारिषद्द्वयके मुखात् यह बात सुनते सुनते महोज्ज्वल सत्यलोक-देखा। तब विष्णुपारिषद्द्वयने शिवशर्म्मा सहित जल्द जल्द विमानसे उतरकर सर्व्वलोकस्रष्टा ब्रह्माको प्रणाम किया, ब्रह्माने कहा, हे विष्णुपारिषद्द्वय ! यह ब्राह्मण बुद्धिमान्, वेदवेदाङ्गपारग, स्मृत्युक्त आचार पालनमें विख्यात और पापकर्म्मोंके प्रतिकूल हैं। यही महाप्राज्ञ द्विज शिव-शर्म्मन् ! मैं तुम्हें जानता हूं ; वत्स ! उत्तम तीर्थमें प्राण त्यागकर तुमने अच्छा किया है ! तुमने जो कुछ देखा, वह समस्त ही दैनन्दिन प्रलय अतःअचिरविनाशी है और मैं पुनः पुनः उसकी सृष्टि करता हूं। महादेव प्रतिपदसे विराटपर्य्यन्त संहार करते हैं, मशकसदृश मरणधर्म्मी मनुष्यग-णकी, तो बात ही नहीं है। जरायुज, अण्डज उद्भिज्ज और स्वेदज, इन चार प्रका-रके भूतग्राममें मनुष्यगणका एकमात्र गुण यही है, कि इस कर्म्मभूमि विशाल भारत-वर्षमें चपल इन्द्रियगणको अपने मानस द्वारा जय करके सब गुणोंके शत्रु लोभको त्याग और धर्म्मनाशक अर्थसञ्चयविरोधी जरा-पलितकर्त्ता कामको विचार द्वारा निराकृत क-रते रहें। इसके उपरान्त धैर्य्य द्वारा तपस्या, यशः, श्री और शरीरका नाशक या तामस-गतिके प्रापक क्रोधको जीतकर प्रमादके निदान मदको परित्याग करके प्रमादके

एक मात्र शरण्य, सम्पदका निवारक और सर्व्वत्र लघुता हेतु अहङ्कारको विदूरित और सज्जनके भी दूषणारोपक द्रोहकारी, मतिघाती, ज्ञाननाशक अन्धतामिस्रदर्शक मोहको जो त्याग करते हैं, वही वेद स्मृति और पुराणप्रोक्त महाजनाचरित धर्म्मसोपानमें आरूढ़ हो इस स्थानमें अनायास आगमन करनेमें सक्षम होते हैं। स्वर्गवासिगण भी कर्म्मभूमिप्राप्तिकी इच्छा करते हैं; क्योंकि यह लोग कर्म्मभूमिमें जो जो अर्ज्जन करते, वही उत्कृष्टापकृष्ट स्थानमें भोग करते हैं। आर्य्यावर्त्त जैसा देश, काशी जैसी पुरी और विश्वेश्वरसदृश लिङ्ग किसी ब्रह्माण्डमण्डलमें नहीं है। दुःखरहित, सुकृतका एकमात्र फलस्वरूप, सर्व्वसमृद्धिपूर्ण बहुतसे स्वर्ग हैं। इस ब्रह्माण्डमण्डलमें स्वर्लोकसे अधिक रमणीय स्थान नहीं है। इसलिये, कि सभी तपस्या, दान और व्रतादि द्वारा स्वर्गके निमित्त चेष्टा करते रहते हैं। नारदने पातालसे समागत होकर स्वर्गवासिगणसे कहा था, कि पाताल स्वर्गलोकसे रमणीय है। जिस पातालमें आह्लादकारी शुभ्र सुप्रभ मणिसमूह नागगणके अङ्गाभरणसे शुभ्र है, वह पाताल किसी स्थानके समान हो सकता है? इतस्ततः दैत्यदानवकन्यासे परिशोभित पातालमें किस विमुक्त व्यक्तिकी भी प्रीति न होगी। जिस जगह दिनमें सूर्य्यकिरण केवल प्रभा वितरण करता है, आतपसे तापित नहीं करता; रात्रिकालमें चन्द्ररश्मि शीत दान नहीं करती, चन्द्रिका केवल विकाश करती है; जहांके दनुजादि अधिवासिगण समय अतिवाहित होनेपर भी जान नहीं सकते; जहां रमणीय वन और नदी है, विमलसलिल सरोवर, कोकिलालापकाल, शुभ्र अत्युत्तम वस्त्र, अति रमणीय भूषण, अनुलेपन गन्धयुक्त, वीणा वेणु मृदङ्गादि ध्वनि अतिमात्र सुननेमें रमणीय और सर्व्वकामद हाटकेश्वर महालिङ्ग विराज रहे हैं, इसके अतिरिक्त अन्यान्य नाना उपभोग्य वस्तु पातालान्तरवासी दानव, दैत्य और उरगगण उपभोग करते हैं। हे द्विज! और इलावृतवर्ष पातालसे रम्य है, वह चतुर्द्दिक सुमेरु पर्व्वतका आश्रय लेकर अवस्थित है। हे द्विज! उस स्थानमें सुकृतकारिगण सर्व्वदा ही सर्व्व भोग वस्तु भोग करते हैं और वहांकी हरिणनयना रमणीगण नवयौवन-सम्पन्न हैं। वह भोगभूमि है। तपः फलके विनिमयसे वह लाभ होती है। जिसने तुम्हारी तरह तीर्थमें देहत्याग किया है, सत्यवादी है, पुत्रकलत्रादि हीन है और सुख आयुः या धनक्षय करके भी परोपकार करता है, वही इस स्थानके भोग करनेमें समर्थ होते हैं। पारावारमें बहुतर द्वीप अवस्थित हैं; उनमेंसे जम्बू-द्वीपके तुल्य कोई द्वीप ही जगतीतलमें नहीं दिखाई देता। इस जम्बू द्वीपमें नौ

वष हैं। उनमेंसे भारतवर्ष सर्व्वोत्तम है। यह कर्मभूमि, देवगणको भी दुर्लभ है। अपर आठ वर्ष किम्पुरुषादि नामसे अभिहित हैं। वह आठो ही देवभोग्य हैं। देवगण स्वर्गसे इन सब वर्षमें आगमन करके क्रीड़ा करते हैं। इस भारतवर्षका विस्तार नौ सहस्र योजन है। यह जम्बूद्वीपका प्रथम वर्ष, सुमेरु पर्व्वतके दक्षिणामें अवस्थित है। उनमें हिमालय और विन्ध्य पर्व्वतका मध्यवर्त्ती स्थान विशिष्ट पुण्यप्रद है, उनमें गङ्गा और यमुनाकी मध्यवर्त्ती अन्तर्वेदि उत्कृष्ट भूमि है। कुरुक्षेत्र सब क्षेत्रोंसे बढ़कर है। उससे और उत्तम नैमिषारण्य स्वर्गसाधन है। इस क्षितिमण्डलमें नैमिषारण्य और अपर सब तीर्थोंसे, स्वर्ग, मोक्ष और सर्व्वकामफलप्रद उत्कृष्ट तीर्थराज प्रयाग है। यह मेरा क्षेत्र है और तीर्थराज नामसे विख्यात है। पूर्व्वकालमें मैंने समस्त याग और कामपूरक इस रमणीय तीर्थको तुलामें धारण किया था। दक्षिणा द्वारा पुष्ट यागनिचयसे इसको उत्कृष्ट देखकर हरिहरादि देवगणने इसका (प्र—याग) नाम रखा। इस प्रयागका नाममात्र स्मरण करनेसे मानवशरीरमें त्रिकालका पाप वास करनेमें सक्षम नहीं होता। पापनाशकारी अनेक तीर्थ हैं सही, किन्तु इस प्रयाग तीर्थसे अधिक सञ्चितपापनाशक कोई नहीं है। असंख्य जन्मजन्मान्तरका सञ्चित पापसमूह, जो व्रत, दान, तपः, जप द्वारा अपनोदित नहीं होता, प्रयाग-गमनोद्यत व्यक्तिका वह सभी पाप वायुताड़ित वृक्षकी तरह कम्पित होने लगता है। फिर प्रयागगमनमें दृढ़चित्त पुरुषके अर्द्धपथ अतिक्रम करनेपर पापराशि उसके शरीरसे निर्गत होनेके लिये स्थानान्तर दर्शन करती है। इसके उपरान्त भाग्यवशतः तीर्थराज प्रयागके देखनेपर सूर्य्योदयसे अन्धकारकी तरह सब पाप अति शीघ्र भाग जाते हैं। सप्तधातुमय शरीरमें जितने पाप हैं, वह केशका आश्रय लेकर रहते हैं, अतएव प्रयागमें केश वपन करना चाहिये। इस प्रकार पापशून्य होकर गङ्गायमुनासङ्गममें स्नान करनेसे जो जो कामना की जाय, वह निःसन्देह प्राप्त होती है। कामनाशील पुरुषगणके प्रयागमें स्नान करनेसे विपुल पुण्यराशि, पवित्र भोग और इसके बाद स्वर्ग प्राप्त होता है और निष्काम व्यक्तिके मोक्ष प्राप्त होता है। अन्य कामना परित्याग कर मुक्ति अभिलाष करके स्नान करनेसे कामप्रद तीर्थराजमें मुक्ति लाभ होता है। जो व्यक्ति तीर्थराजको परित्याग करके अन्यतीर्थसे काम इच्छा करते हैं, वह निश्चय ही भारतवर्षमें काम प्राप्त नहीं होते। हे द्विज! सत्यलोक और प्रयागमें कौन विशेष है, इस मतमें हमारी विवेचना नहीं होती। इस

प्रयागमें जितने शुभकर्म्मा मनुष्य हैं, वह हमारे लोकवासी हैं। पृथ्वीमण्डलमें कोई भी प्रयागके अतिरिक्त तीर्थान्तरकी सेवा न करें। हे द्विजश्रेष्ठ! राजा और उनके सेवकमें जितनी दूरका अन्तर है, प्रयाग और तदितर तीर्थमें उतना ही प्रभेद है। नर, चाहे किसी प्रकारसे इस प्रयागमें प्राण त्याग करें, उनको आत्महत्याका पाप नहीं होगा। जिन भाग्यवान् व्यक्तिकी अस्थि प्रयागमें रहे, उसे किसी जन्ममें दुःखका लेश भी नहीं होता। ब्रह्महत्यादि पापका प्रायश्चित्त करनेकी इच्छा होनेसे, वेद-वाक्यानुसार यथाशास्त्र प्रयागकी सेवा करें, इसमें संशय नहीं। हे विप्रेन्द्र! अधिक और क्या कहूं! अत्यन्त वृद्धिकी इच्छा होनेसे जगतीतलमें सर्व्वोत्तम सितासित तीर्थकी सेवा करें। सब भुवनमें तीर्थेश्वर प्रयागसे, काशीमें देहावसन होनेसे, अनायास ही मुक्ति होती है। अतएव स्वयं विश्वेश्वराधिष्ठित अविमुक्त क्षेत्र प्रयागसे रम्य है। विश्वेश्वराधिष्ठित अविमुक्त क्षेत्रसे रम्य ब्रह्माण्डमण्डलमें कुछ भी नहीं है। पञ्चक्रोश प्रमाण अविमुक्त क्षेत्र ब्रह्माण्ड मध्यवर्त्ती होनेपर भी वह ब्रह्माण्डके अन्तर्भूत नहीं है। प्रलयकालमें एकार्णव जल जितना ही बढ़ता है, महादेव इस क्षेत्रको उतना ही ऊंचा करके रखा करते हैं। हे द्विज! यह क्षेत्र महादेवके त्रिशूलाग्रके अन्तरीक्षमें अवस्थित है। मूढ़बुद्धिगण भूमिस्थित यह क्षेत्र देख नहीं सकते। इस विश्वेश्वराश्रममें सदा सत्ययुग और महापर्व्व विराजमान हैं, इस स्थानमें ग्रहगणका उदयास्तकृत दोष नहीं है। जिस जगह विश्वेश्वर रहते हैं, वह सदा सौम्यायन और महोदय है। हे विप्र! भूमितलमें सहस्र सहस्र जो पुरी हैं, काशीको वैसी विवेचना न करना, यह एक असाधारण पुरी है। हे विप्रेन्द्र! मैंने चतुर्द्दश भूमिकी सृष्टि की है, किन्तु इस पुरीके निर्म्माता स्वयं प्रभु महादेव हैं। पूर्व्वकालमें यमने दुष्कर तपस्याचरण करके काशीके अतिरिक्त त्रैलोक्यका आधिपत्य प्राप्त किया था। काशीवासिकृत कर्म्म छोड़कर सब स्थावर जङ्गमका काम चित्रगुप्तके गोचरीभूत है। महेश्वरके प्रथम परिरचित काशीमें कभी भी यमदूतगणका प्रवेशाधिकार नहीं है। स्वयं विश्वेश्वर काशी-मृतगणके नियन्ता हैं। काशीमें जो पाप करता है, उन लोगोंके नियन्ता कालभैरव हैं। अतएव उस स्थानमें पाप करना उचित नहीं है। करनेसे जो केवल रुद्रयातना ही हो, ऐसा नहीं; किन्तु नरकसे भी दुःसह रुद्र पिशाचत्व होता है। "पाप करेंगे ही" यदि ऐसी बुद्धि हो, तो विपुल पृथिवीमें और किसी जगह सुखसे पाप करना उचित है। कामातुर होनेपर भी जन्तु एकमात्र मातासे व्यभिचार नहीं

करता ; पापकारी होनेपर भी मोक्षार्थी होकर एकमात्र काशीमें पापाचरण न करें। जो परापवादशील और परदाराभिलाषी हैं, उनको काशीसेवा करना उचित नहीं है। कहां मोक्षदात्री काशी और कहां यह नरक तुल्य व्यक्ति! जो प्रतिग्रह धनाभिलाष या कपटता द्वारा परस्वाभिलाष करते हैं, वह काशीसेवा न करें। काशीमें नित्य ही परपीड़ाकर कार्य्य त्याग करें; यदि वही करें, तो ऐसे दुरात्माओंके काशीवासका प्रयोजन क्या है? जो विश्वेश्वरकी भक्ति त्यागकर दूसरे देवताकी भक्ति करता है, वह कभी भी पिनाकपाणिकी राजधानीमें वास न करे। हे विप्र! जो अर्थार्थी या कामार्थी मानव हैं, वह मुक्तिदायक अविमुक्त क्षेत्रमें वास न करें। जो नर, शिवनिन्दा और वेदनिन्दानिरत हैं और जो वेदाचारके प्रतिकूलाचारी हैं, वह वाराणसीकी सेवा न करें। जो परद्रोह परोपकारनिरत और परोपतापी हैं, काशीमें उन लोगोंकी सिद्धि नहीं होती। जो दुर्बुद्धिगण मन ही मन भी काशीका अभिनन्दन नहीं करते, उन दुर्व्वृत्तियोंके निर्व्वाणकी बात दूरपराहत है। भूमण्डलमें कहीं भी ज्ञानके सिवा मोक्ष नहीं होता। वह ज्ञान, चान्द्रायणादि व्रत, श्रद्धान्वित उत्तम देशमें यथाशास्त्र सत्पात्रको प्रतिपादित तुलापुरुष दान, यम, ब्रह्मचर्य्यादि नियम, अर्चना, शरीरशोषक उग्र तपस्या, गुरुप्रतिपादित महामन्त्र जप, स्वाध्याय, यथोक्त अग्निशुश्रूषा, गुरुसेवा, श्राद्ध, देवतार्चन और नाना तीर्थयात्रा द्वारा भी लाभ नहीं होता! योग बिना ज्ञान नहीं होता। तत्त्वार्थ-शीलन ही योग है। वह गुरुपदिष्ट मार्ग द्वारा सदा अभ्याससे लाभ किया जाता है। इसका सुदूर श्रवणादि बहु अन्तराय हैं; अतएव एक जन्ममें योगसे ज्ञान प्राप्ति नहीं होती। हे द्विजोत्तम! तुमने शुद्धबुद्धिसे काशीमें जो श्रेयः अर्ज्जन किया है, उसका परिणाम बहुत उत्कृष्ट है। गणद्वयके सामने ब्रह्मा इस प्रकार कहकर विरत हुए। यह सुनकर महामना शिवशर्म्माको नितान्त प्रमोद प्राप्त हुआ।

द्वाविंश अध्याय समाप्त ॥ २२ ॥

त्रयोविंश अध्याय।

नारायणाभिषेक।

शिवशर्म्माने कहा, हे सत्यलोकेश्वर! सर्व्वभूत प्रपितामह! विधातः! मैं कुछ विज्ञापन करनेकी इच्छा करता हूं, किन्तु मुझे उत्साह नहीं होता है। ब्रह्माने कहा, हे विप्र! तुम जो पूछनेकी इच्छा करते हो, मैं तुम्हारा मनोगत वह भाव जान चुका हूं; तुम निर्व्वाणकी बात पूछना चाहते हो, वह यह गणद्वय

तुमसे कहेंगी। इन विष्णुगणद्वयसे अगोचर कुछ भी नहीं है। ब्रह्माण्डमें जो कुछ है, यह लोग उन सबसे विदित हैं। ब्रह्माके यह कहकर उन विष्णुगणोंका सत्कार करनेपर इनलोगोंने लोककर्त्ता ब्रह्माको प्रणामकर हृष्टान्तःकरणसे प्रस्थान किया; पुनर्व्वार स्वकीय यानपर आरूढ़ हो वैकुण्ठाभिमुख गमन किया चलते चलते शिवशर्म्माने गणद्वयसे पूछा, हमलोग कितनी दूर आये, और कितनी दूर हमलोगोंको जाना होगा? हे भद्रद्वय! आप लोगोंसे और भी एक बात पूछता हूं, उसे भी प्रीतिपूर्व्वक कहिये। काञ्ची, अवन्ती, द्वारवती, काशी, अयोध्या, मायापुरी, और मथुरा, यह सात पुरी मुक्तिप्रद हैं। उनमें "काशीहीमें मुक्ति प्रतिष्ठित है" यह ब्रह्माने कहा था। तब क्या हमारी मुक्ति न होगी? आपलोग प्रसन्न होकर हमारे सम्मुख इसका यथार्थ उत्तर दीजिये। गणद्वय शिवशर्म्माकी यह बात सुनकर आदरपूर्व्वक कहने लगे! हे अनघ! तुमने जो प्रश्न किया, उसका यथार्थ उत्तर देता हूं; हमलोग विष्णुके प्रसादसे भूत, भविष्यत, और वर्त्तमान सब जानते हैं। हे ब्राह्मण! चन्द्र और सूर्य्यकी किरण जितनी दूर उद्भासित करे, वह समुद्र, पर्व्वत और काननयुक्त स्थान 'भू' कहकर कीर्त्तित है। आकाश उसके ऊपर विभागमें भूमिके न्याय दीर्घ और मण्डलाकारमें अवस्थित है। भूमिसे नियुत योजन ऊंचेपर सूर्य्य अवस्थित हैं। भानुके निकटसे लक्ष योजन ऊपर चपाकर लक्षित होते हैं। चन्द्रसे लक्ष योजन अन्तरपर नक्षत्रमण्डल हैं; वहांसे द्विलक्ष योजन ऊंचेपर बुध; बुधसे द्विलक्ष योजन अन्तरपर शुक्र; मङ्गल शुक्रसे द्विलक्ष योजन ऊंचेपर हैं; वृहस्पति, मङ्गलसे नियुतद्वय ऊपर हैं; वृहस्पतिसे द्विलक्ष योजन ऊंचेपर शनि हैं; शनिसे लक्षयोजन ऊर्द्ध सप्तर्षिमण्डल है और सप्तर्षिसे लक्षयोजन ऊपर भागमें ध्रुव अवस्थान करते हैं। धरणीतलमें जो कुछ वस्तु पादगम्य है, समुद्र, द्वीप, पर्व्वत और काननके सहित वह समस्त भूर्लोकके नामसे प्रसिद्ध है। भूर्लोकसे सूर्य्य पर्य्यन्त भुवर्लोक, वहांसे ध्रुव पर्य्यन्त स्वर्लोक, क्षितिके एक कोटि योजन ऊर्द्ध महर्लोक, दो कोटि योजन ऊंचे जनलोक है, चार कोटि योजन ऊंचे तपोलोक, क्षितिसे आठ कोटि योजन ऊंचे सत्यलोक और सत्यलोकके ऊपरी भागमें वैकुण्ठ है। वह भूर्लोकसे षोड़श कोटि योजन ऊंचेपर अवस्थित है। जिस जगद्व सर्व्वभूतके अभयप्रद साक्षात् कमलापति विराजमान हैं, उस वैकुण्ठसे षोड़श गुण महादेवका निलय कैलास है। जिस कैलासमें सर्व्वस्वरूप विश्वेश्वर शम्भु पार्व्वती, गणेश, कार्त्तिक और नन्दी

सहित अवस्थान करती हैं। यह दृश्यमान प्रपञ्च उनका लीलास्वरूप है, उन्होंने लीलावश मूर्त्ति धारण की है। वह विश्वेश्वरके नामसे विख्यात हैं; यह जगत उनका आज्ञाकारी है। वह सबके शास्ता हैं, उनका शास्ता कोई नहीं। वह स्वयं भूतकी सृष्टि, पालन और लय करती हैं। वह एक ही सर्व्वज्ञ हैं, उनकी चेष्टा स्वेच्छाधीन और उनका प्रवर्त्तक या निवर्त्तक नहीं है। जो श्रुतिनोदित अमूर्त्त और समूर्त्त परब्रह्म हैं, वह वही हैं; जो सर्व्वव्यापी, सर्व्वदा नित्य, सत्यस्वरूप और द्वैत विवर्ज्जित हैं, वह वही हैं। उन महदादि सम्पूर्ण कारणसे जो प्रधान हैं, वह उससे भी प्रधान हैं। वेद जिन्हें आनन्द ब्रह्मका रूप कहते हैं; जो वेदके भी अगोचर हैं; जिन्हें विष्णु ही जानते हैं, विधि नहीं जानते; ज्ञानसे असमर्थ होकर जिनसे वाक्य और मन निवृत्त होता है; जो स्वयं वेद्य परज्योतिः हैं, सबके हृदयमें अवस्थित हैं, जो योगिगम्य, अमाध्येय और एकमात्र प्रमाणगोचर हैं। वह नानारूप होनेपर भी रूपशून्य हैं, सर्व्वग होनेपर भी किसीके गोचर नहीं हैं। अनन्त, अखण्डज्ञात, सर्व्वज्ञ और कर्म्मवर्ज्जित उनका इस प्रकार ईश्वर रूप है,—चन्द्रखण्ड अवतंस, गलदेश तमालके न्याय श्यामलवर्ण, ललाटमें तृतीय-लोचन विस्फुरित, वामार्द्धभाग नारीरूपसे सुशोभित हैं। अनन्तदेव उनके अङ्गद हैं; गङ्गातरङ्गके सङ्गसे जटातट विधौत होता है। अङ्ग अनङ्गगात्रभस्मसे उज्ज्वल है। वह विचित्रगात्र महासर्पभूषणसे विभूषित, वृषरथारूढ़, अजगरधनुर्द्धारी, गजाजिनोत्तरीय, पञ्चवदनमङ्गलदाता, महामृत्युके त्राणदाता, महाबलप्रमथपरिवृत, शरणागतके त्राणकारी, प्रणत जनके मोक्षप्रद, मनोरथपथातीत, और वरदानपरायण हैं। हे द्विज! उन्हीं तत्वस्वरूप रूपातीत महादेवका सगुण निर्गुण संसारदुःखविनाशी रूप विश्वव्यापी हो रहा है। निराकार होनेपर भी साकार वह शिव ही मुक्ति और भोगके कारण हैं। शिवसे पृथक् मोक्षदाता और कोई नहीं है। रूपविहीन विष्णुने जिस प्रकार इस चराचर दृश्य अदृश्य विश्वको शिवसात् किया है; हे विप्र! उसी प्रकार उमापति भी अखिल जगत्को विष्णुसात्कर स्वाधीन लीलाके वशीभूत हो क्रीड़ा करते हैं। जैसे शिव, वैसे ही विष्णु और जैसे विष्णु वैसे ही शिव हैं। शिव और विष्णुमें कुछ भी भेद नहीं है। पूर्व्वकालमें महादेवने, ब्रह्मादि समस्त देवगण, विद्याधर, उरग, सिद्ध, गन्धर्व्व, चारणगणको बुलाकर, अपने सिंहासनके तुल्य शुभसिंहासन धर, उसपर हरिको उपवेशन करा मनोहर, रमणीय, कोटिशलका-

युक्त, विश्वकर्म्मा निर्म्मित, पाण्डुर वर्ण, रत्नदण्ड, स्थूलमुक्तावलम्बित, ऊपरसे विचित्र कलसयुक्त, सहस्र योजन विस्तृत, सर्व्वरत्नमय, पट्टसूत्रमय, चामर-शोभित छत्र निर्म्माण कर राज्याभि-षेकयोग्य सर्व्वौषधि आदि द्रव्य संग्रह कर पञ्चकुम्भस्थित, सिद्धार्थ, अक्षत, दूर्व्वामिश्रित तीर्थजलमें प्रक्षालन कराके, देवगणकी, ऋषिगणकी, सिद्धगणकी और फणिगणकी, षोड़श षोड़श मङ्गलपाणि कन्या बुलाकर, वीणा मृदङ्ग, शङ्ख, भेरी, मरु, डिण्डिम, झर्झर, आनक, कान्स्यतालादि वाद्य ललित गान और वेदध्वनिसे गगनाङ्गण पूरित होनेपर, शुभ-तिथि, शुभलग्न और चन्द्रताराबलयुक्त क्षणमें आवद्धमुकुट, कृतकौतुकमङ्गल, मृड़ानीरचितवेश, सश्री लक्ष्मी समन्वित, रमणीय हरिको स्वयं ब्रह्माण्डमण्डपमें अभिषेककर, जो औरोंको भोग्य नहीं, वह निज ऐश्वर्य्य दान किया था। तद-नन्तर, देवेश्वर शिवने प्रमथगणके सहित शार्ङ्गपाणिका स्तव किया और लोककर्त्ता ब्रह्मासे यह बात कहा, यह विष्णु हमारे वन्दनीय हैं, तुम इन्हें प्रणाम करो। रुद्रने यह कहकर स्वयं गरुड़ध्वजको प्रणाम किया। अनन्तर गणेश्वरगण ब्रह्मा, मरु-द्गण, सनकादि योगिसमूह, सिद्धसमूह, देवर्षिनिचय, विद्याधर निकर, गन्धर्व्वगण, यक्ष रक्ष, अप्सरागण, गुह्यक सकल, चार-णचय, शेष, वासुकि, तक्षक, पतत्रिगण, किन्नर और समस्त स्थावर, जङ्गमने, "जय जय" और "नमोऽस्तु नमोऽस्तु" कहा था। अनन्तर परमार्च्चिःअव्यक्त महेश्वरने देव-सभामें इन सब बातों द्वारा पूजा की थी "तुम्हीं सब भूतोंके कर्त्ता, पाता और संहर्त्ता हो; तुम्हीं जगतके पूज्य; तुम्हीं जगदीश्वर हो। तुम्हीं धर्म्म, अर्थ और मोक्षके दाता हो; तुम्हीं दुर्नयकारीके शास्ता; तुम संग्राममें मेरे भी अजेय होगे। इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्ति यह शक्तित्रय मैं तुम्हें देता हूं, ग्रहण करो। जो लोग तुम्हारे द्वेष्टा हैं, मैं यत्नपूर्व्वक उनलोगोंका शासन करूंगा और तुम्हारे भक्तगणको उत्तम निर्व्वाण दान करूंगा। तुम सुरासुरकी दुष्परिहार्य्य यह माया ग्रहण करो, यह विश्व मायामें अभिभूत होकर कुछ भी ज्ञात नहीं हो सकेगा। तुम मेरे वाम बाहु और यह पितामह दक्षिण-बाहु। तुम इन विधिके भी पाता और जनक होगे।" इस प्रकार स्वयं हर, हरिको वैकुण्ठैश्वर्य्य दान करके प्रमथ-गणके सहित स्वच्छन्दसे कैलासमें क्रीड़ा करते हैं। उसी समयसे शार्ङ्गधन्वा, गदा-धर, दानवान्तकारी हरि, त्रैलोक्यका शासन करते हैं। हे विप्र! तुमसे इस लोककी परिस्थिति कही, अब तुम्हारे निर्व्वाणका कारण कहता हूं। जो मनुष्य यह

उत्कृष्ट आख्यान समाहित-चित्तसे श्रवण करते हैं, देह लोकमें गमन करके अनन्तर कामोमें निर्व्वाण पाते हैं। यज्ञमें, उत्सवमें, विवाहमें, समस्त मङ्गलकार्य्यमें, राज्याभिषेकके समय, देवस्थापन कार्य्यमें, सर्व्वाधिकार दानमें और नवगृहप्रवेशमें उस कार्य्यकी सिद्धिके निमित्त इसे यत्नपूर्व्वक पाठ करें। इसके पाठ करनेसे अपुत्र पुत्र लाभ करते, धनहीन धनवान होते, पीड़ित पीड़ासे विमुक्त होते, वद्ध बन्धनसे मुक्त होते, अतएव मङ्गलार्थी प्रयत्नके सहित इसका जप करें। यह आख्यान अमङ्गलका शमन महादेव और नारायणका प्रिय है।

त्रयोविंश अध्याय समाप्त ॥ २३ ॥

चतुर्व्विंश अध्याय।

शिवशर्म्माकी निर्व्वाणप्राप्ति।

गणद्वयने कहा, हे शिवशर्म्मन्! हम तुम्हारा परिणाम कहते हैं, सुनो। तुम तीर्थमरणप्राप्त पुण्यके अवशिष्ट अंश द्वारा, इस वैष्णव लोकमें ब्रह्माके पूर्ण एक वर्षतक अप्सरागणके साथ प्रभूत ऐश्वर्य्य भोग कर, नन्दिवर्द्धन नगरके राजा होगे। असपत्न, सम्पन्नबलवाहन, हृष्ट-पुष्ट स्वर्णभूषणधारी इष्टापूर्त्त धर्म्मकर्म्ममें नित्य अनुष्ठाता पण्डितगण-सेवित, सदा सम्पन्नशस्य, उर्व्वरक्षेत्रसङ्कुल, सुदेश, सुप्रज, सुख, सुतृण, बहुगोधन, और देवगृहसमूहमें विराजित राज्यको प्राप्त होगे। जिस राज्यमें सब ग्राम सुपुष्प और सुवित्तर्द्धि-विराजित हैं; जहांके सब कृत्रिम उद्यान उत्कृष्ट पुष्पसे विभूषित और सदा फलप्रद पादपगणसे शोभित हैं; जिस भूमिके सब सरोवर पद्मयुक्त समलङ्कृत हैं; नदीनिचय स्वच्छ और स्वादु सलिलयुक्त हैं, जहां किसी जगह अधिक जनता नहीं है; जिस जगहके सभी कुलीनशब्दवाच्य गोत्र हैं; अन्यायाधिगत धन कुलीन (कु पृथिवीमें लीन) नहीं हैं; जिस जगह विभ्रम नारीमें ही है, पण्डितमें नहीं; नदी सभी कुटिल गामिनी हैं, किन्तु प्रजानिचय वैसे नहीं; जिस जगह कृष्णपक्षकी तमोयुक्त रात ही है, मनुष्यगण तमोयुक्त नहीं; स्त्री ही रजोयुक्त हैं, किन्तु धर्म्मप्रधान मनुष्यगण वैसे नहीं हैं; जिस जगहके धनहेतु मनुष्यगण ही अनन्ध अर्थात् अहङ्कारहीन हैं, किन्तु भोजन अनन्धः (अन्धस् भात् उससे रहित) नहीं हैं; जिस जगह रथ अनयः (अयस् लोहसे रहित) है, किन्तु राजपुरुषगण अनय अर्थात् नीतिशून्य नहीं हैं; कुठार, कुद्दाल, चामर और छत्र ही दण्ड है, किन्तु क्रोधापराध वशत मनुष्य हों ऐसा नहीं; वहां अक्षव्यवहारी व्यक्ति ही परिदेवन अर्थात् क्रीड़ा करते हैं, किन्तु और कोई व्यक्ति परिदेवन अर्थात् विलाप नहीं करता; जिस जगह द्युतिक्रीड़ाशील

व्यक्ति ही पाशकपाणि हैं, दूसरा कोई भी पाशकपाणि अर्थात् रज्जुपाणि नहीं हैं; जिस जगह जल होमें जाड्य है, स्त्रीमें ही कृश है; रमणीहृदय जो कठोर है, किन्तु मनुष्यगण कठोर नहीं हैं; जहां औषध प्रकरणमें ही कुष्ट शब्दका प्रयोग है, किन्तु मनुष्यके कुष्ट नहीं है; जहां तिथि और नक्षत्र ही वेध है, अर्थात् दूसरेके साथ संयोग है; ज्योतिः प्रसिद्ध योगसे ही शूल है; जिस जगह रत्नमें ही वेध होता है और मूर्त्तिकरमें ही शूल दिखाई देता है, किन्तु किसी मनुष्यको वेधताड़ या शूलरोग नहीं होता; जहां सात्विक भावसे ही कांपते हैं, भयवश नहीं; जिस जगह कामसे सन्ताप होता है, कलुषका अभाव है; पापकी ही दुर्लभता है, सङ्क्रान्तिकी नहीं; जिस जगहके हाथीगण प्रमत्त हैं, जलाशयमें तरङ्गदयसे ही युद्ध है, जहां गजके दानकी ही हानि है, वृक्षमें ही कण्टक है; जहां मनुष्यगणका ही विहार है, किन्तु किसीका भी वक्षःस्थल विहार (हारशून्य) नहीं है; बाणके ही गुणसे वियोग है, पुस्तकका ही दृढ़ बन्धन है; जहां पाशुपतव्रतधारीका ही स्नेहत्याग है, संन्यासियोंका दण्ड ही वार्त्ता है; जहां धनुषसे ही मार्गण अर्थात् बाण है, किन्तु और जगहमें मार्गण अर्थात् याचक नहीं हैं; जहांके ब्रह्मचारी ही भिक्षुक हैं, और कोई नहीं; जहां अर्हदुपासक क्षपणकगण ही मलधारी हैं, और कोई भी मल अर्थात् पापधारी नहीं हैं; और जहां भ्रमरगण ही चञ्चलवृत्ति इत्यादि गुणसम्पन्न देशके शौण्डीर्य्यगुणशाली, सौन्दर्य्यवान्, शौर्य्य औदार्य्य गुणान्वित हो तुम्हारे धर्म्मतः राज्य शासन करनेसे लावण्यवती रमणीय अयुत रमणी तुम्हारी राज्ञी होंगी और तीन सौ कुमार लाभ करोगे। तुम वृद्धकालमें विख्यात वीर और परपुरञ्जय होगे। तुम कितने ही समर जय करोगे और सम्पत्ति द्वारा याचकगणका तृप्तिसाधन करोगे। तुम पूर्णचन्द्रद्युति और सब गुणके आकर होगे। अवभृथ स्नानसे तुम्हारा केश सदा सिक्त होगा। प्रजापालनतत्पर राजश्रेष्ठ होगे, कोषद्वारा विप्रगणकी प्रीति उत्पादन करोगे और आलस्यशून्य होकर गोविन्दका पदारविन्द ध्यान करते हुए दिनरात वासुदेव कथामें ही समय बिताओगे। हे ब्राह्मण! तुम्हारे भाग्यबलसे किसी समयमें काशीसे कई यात्री राजसभामें आकर तुम्हें इस प्रकार आशीर्वाद देते हुए कहेंगे, "जगद्गुरु काशीनाथ श्रीमान् विश्वेश्वर तुम्हारी कुमति ध्वंस करें; स्मरण करनेसे भी जो मुक्तिसम्पत् वितरण करते हैं, वह काशीनाथ तुम्हें अमल ज्ञान उपदेश करें। जिस पुण्यसे तुम इस अकण्टक प्रभूत राज्यको प्राप्त हुए हो, उस पुण्यके अवशिष्ट अंश द्वारा तुम्हारा मन विश्वेश्वरको अर्पित

हो। जिन विश्वनाथके प्रसन्न होनेपर, आयुः, पुत्र, वरनारी, समृद्धि, स्वर्ग और मोक्ष सुलभ होता है, वह विश्वनाथ प्रसन्न हों। जिनके नाम सुननेसे महापातकका भी नाश होता है, वह विश्वेश्वर तुम्हारे हृदयमें अवस्थान करें।" तुम वृहत्कालमें भूपति हो आशीर्वाद परम्परा सुनते हुए पुलकितकलेवर होकर यह वृत्तान्त स्मरण करोगे। किन्तु आकार छिपाये हुए उन लोगोंको बहुत धन दान कर सुमुहूर्त्तमें पुत्रके हाथ राज्य अर्पणकर रानी अनङ्गलेखाके साथ काशीमें जाओगे। प्रभूत दान द्वारा अर्थिगणकी प्रीति उत्पादन करके अपने नामसे विख्यात निर्व्वाणकारण शिवलिङ्ग संस्थापनकर उस स्थानमें उच्च प्रासाद और उसके आगे कूप निर्म्माणकर उसमें कलसारोपणादि करके, मणि, माणिक्य, चाम्पेय, दुकूल, हाथी, गोधन, महाध्वज, पताका, छत्र, चामर, दर्पण प्रभृत देवोपकरण अकृपणचित्तसे दानकर व्रत, उपवास और नियम द्वारा क्षीणकलेवर हो उस काशीमें मध्याह्नकालमें निर्जन देशमें एक तपोधनको देखोगे। उन तपोधनका शरीर अतीव जीर्ण, जटा नितान्त पिङ्गलवर्ण है। वह साक्षात् जनमनोहर उन्नत धर्म्मकी तरह शोभमान हैं। वह अङ्गयष्टिका भार दृढ़ यष्टिको अर्पणकर शिवभवनसे निष्क्रान्त हो रङ्गमण्डपमें आते होंगे। वह तुम्हारे पास आकर अनुक्रमसे इस प्रकार प्रश्न करेंगे, "तुम कौन हो? इस जगह क्यों आये हो? और तुम्हारी द्वितीयकी तरह यह कौन है? यदि अवगत हो, तो कहो, किसने यह प्रासाद निर्म्माण किया है? इन शिवलिङ्गका नाम क्या है? मैं वार्द्धक्य वशतः इससे विदित नहीं हूं।" इस तरह वृद्ध तपस्वीके पूछनेपर तुम कहना, "मैं वृहत्काल नामक दाक्षिणात्य राजा हूं, इस जगह पत्नी सहित आया हूं। मैं इन लिङ्गका ध्यान करता हूं, किन्तु कुछ भी प्रार्थना नहीं करता; हे जटिल! स्वयं शिव इस प्रासादके कारयिता हैं। मैं इन लिङ्गके नामसे विशेष विख्यात नहीं हूं।" जटाधारी नरपतिकी यह बात सुनकर कहेंगे, "तुमने यह सच कहा है, कि लिङ्गका नाम नहीं जानते! मैं नित्य ही तुम्हें सुनियत भावसे उपविष्ट देखता हूं; अतएव तुमने सुना होगा, कि किसने यह प्रासाद बनवाया है। यदि इस तत्त्वसे अवगत हो, तो मुझसे कहो।" उनकी यह बात सुनकर तुम फिर कहोगे, "झूठ क्यों कहूं? शम्भु ही कर्त्ता और कारयिता हैं। अथवा हे विभो! तपस्विन्! मेरी ऐसी चिन्तासे फल क्या है?" तुम्हारे ऐसा कहकर चुप होनेपर वह वृद्ध तापस फिर कहेंगे, "मैं प्यासा हुआ हूं। जल लाकर मुझे दो।"

उनके प्रेरित करनेपर कूपसे जल लाकर तुम उन्हें पिलाना। जलपान करके तत्-क्षणात् वह वृद्धताग्रस्त, निर्म्मोकमुक्त भुजङ्गकी तरह पूर्णिमाचन्द्र-सदृश सुप्रभ तरुण और रूपसम्पन्न होंगे, तब तुम आश्चर्य्यान्वित हो उनसे फिर कहोगे, "हे भगवन्! आप जो जरा त्याग करके तरुण हो शोभा पाते हैं, यह किस प्रभावसे? हे तपोधन! यदि अवकाश हो, तो कहिये।" तपोधन कहेंगे, "हे! वृद्धकाल नरपते! मैं तुम्हें जानता हूं और इन पतिव्रता तुम्हारी पत्नीको भी जानता हूं।" यह इस जन्मके पहले तुर्व्वसु नामक ब्राह्मणकी सदाचारान्विता सुमुखी कन्या थीं। तुर्व्वसुने नैध्रुव नामक एक महात्माके विवाहार्थ इनका दान किया। नैध्रुव यौवन प्राप्त होते ही कालधर्म्मको प्राप्त हुए। यह वैधव्य पालन करते करते अवन्तीमें मृता हुईं। उसी पुण्यसे पाण्ड्य नरपतिकी कन्या हुईं और हे राजन्! इन पतिव्रतासे तुमने विवाह किया है। अब इस जगह तुम्हारे साथ आकर मुक्ति लाभ करेंगी। अयोध्या, अवन्ती, मथुरा, द्वारवती, काञ्ची और मायापुरीमें पातकिगणके भी निधन प्राप्त होनेसे वह स्वर्गसे इस स्थानमें आकर मोक्षको प्राप्त होते हैं। हे नृप! मैं तुम्हें भी जानता हूं। तुम अगले जन्ममें मथुरावासी शिवशर्म्मा नामक द्विज थे। तुम मायापुरीमें मृत हुए थे। उसी पुण्यसे वैकुण्ठ प्राप्त होकर मनोरम भोग उपभोग करके, उसी पुण्यके शेषांशसे नन्दि-वर्द्धनमें राजा हुए हो। हे वृद्धकाल महीपाल! उस सुकृतबलसे ही इस मोक्ष-क्षेत्र वाराणसीमें आये हो और मुक्ति लाभ करोगे। हे राजेन्द्र! और भी कहता हूं; सुनो; तुमने जो कहा, प्रभु इस-प्रासादके कर्त्ता और कारयिता हैं, सो सच है। पुण्यकर्म्म कहीं भी प्रकाश न करना। 'मैंने किया है, ऐसी बात कहनेसे, पुण्य तत्क्षणात् क्षयको प्राप्त होता है। अत-एव धनकी तरह पुण्यको बहुत यत्नसे छिपा रखना। पुण्यका कीर्त्तन करनेसे वह भस्ममें आहुतिकी तरह व्यर्थ होता है। हे अनघ! निश्चय तुमने विश्वनाथ द्वारा प्रेरित हो यह प्रासादादि निर्म्माण किया है, सो मैं जानता हूं। हे मही-पते! वृद्धकालेश्वर नामक लिङ्ग अनादि हैं, सो जानो, किन्तु तुम इसके निमित्त हो। इन वृद्धकालेश्वर लिङ्गके दर्शन, स्पर्शन, पूजन और प्रणामसे सब वाञ्छित प्राप्त होते हैं। कालोदक नामक कूप जरा और व्याधिनाशक है। इसका जल पान करनेसे माताका स्तन नहीं पान करना होता। इस कूपजलमें स्नान और इन लिङ्गकी पूजा करनेसे नर एक वर्षमें मनोभिलषित सिद्धि लाभ करता है। कालदमोदक पान करनेसे कुष्ट, विस्फोटक, रक्षा नामक रोग, विचर्च्चिका

और कफपीड़ा नहीं रहती। अग्निमान्द्य, शूल, मेह, प्रवाहिका मूत्रकृच्छ्र, पामा, भूतज्वर और विषमज्वर इस कूपोदककी सेवनसे शीघ्र उपशान्त होता है। इस कूपोदक पानसे तुम्हारे सामने ही मेरा ज्वरा और पलित .चणकालमें नष्ट हुआ है और मैं तरुण हुआ हूं। वृद्धकालेश्वर लिङ्गकी सेवा करनेसे दरिद्रता नहीं आती; उपसर्ग रोग, पाप और पाप जन्यफल नहीं होता। बाराणसीमें कृत्तिवासकी उत्तरमें वृद्ध कालेश्वर लिङ्गका सिद्धिलाभार्थिगण यत्न सहित दर्शन करेंगे।" यह बात कहकर तपोधन, सपत्नीक महाराजका हाथ धरकर उस लिङ्गमें लयको प्राप्त होंगे। "महाकाल, महाकाल, महाकाल" कीर्त्तन करनेसे मनुष्य शत प्रकार पापसे मुक्त होता है, इसमें सन्देह नहीं। नारायण दर्शनसे वैकुण्ठमें बहुत तरह भोग लाभ करके तुम्हारी इस प्रकार मुक्ति होगी। मैत्रावरुणिने कहा, हे लोपामुद्रे! उन ब्राह्मणने मायापुरीमें प्राणत्यागजनित पुण्यबलसे मनोरम भोगको प्राप्त हो कर वैकुण्ठसे नन्दीवर्द्धन पत्तनमें आगमनकर पार्थिव सुखसमूह अनुभव करते सुन्दर पुत्र उत्पादन किया। फिर उसपर राजनिक्षेप कर बाराणसी नगरीमें जा विश्वेश्वरकी आराधना कर मुक्तिपदको प्राप्त हुए। शिवशर्म्मा ब्राह्मणका यह पुण्यतम आख्यान सुननेसे पाप विनिर्मुक्त हो उत्कृष्ट ज्ञान प्राप्त होता है।

चतुर्विंश अध्याय समाप्त॥ २४॥

पञ्चविंश अध्याय।

अगस्त्यका कार्त्तिकेयदर्शन।

व्यासने कहा, हे सूत! सुनो, मैं कुम्भसम्भव अगस्त्यकी कथा कीर्त्तन करता हूं, श्रवण करनेसे मनुष्य रजसे रहित और ज्ञानभाजन होता है। सपत्नीक अगस्त्यने श्रीपर्व्वत प्रदक्षिणा करके महत स्कन्दवन देखा। यह वन सदा सब ऋतुमें कुसुमसे सुशोभित, सरस फलयुक्त पादपसे परिपूर्ण; सुसेव्य कन्दमूलसे अलङ्कृत, उत्कृष्ट वल्कलयुक्त वृक्षपरिवृत, विनीतश्वापदसङ्कुल, सरित और पल्वसमन्वित, स्वच्छसलिल, और गम्भीर सरसीसमन्वित सम्पूर्णभूमिका सार स्वरूप, नाना पक्षिनाद निनादित, नानामुनिगणका आवासस्थान मानो तपस्याका सङ्केतनिलय और सम्पत्तिका एक मात्र स्थान है। उस स्थानमें स्वर्णगिरिसन्निभ लोहित नामका एक पर्व्वत है। इस पर्व्वतका कन्दर, प्रस्रवण, सानु और शिखर अति रमणीय है; मानो कैलासपर्व्वतका एक देश नाना आश्चर्ययुक्त होकर इसी कर्म्मभूमिमें तपस्या करनेको आया है। मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यने उस पर्व्वतपर साक्षात् षड़ानन-कार्त्तिकेयका

दर्श नपाया। उस समय महातपाः कुम्भ-सम्भव, पत्नीके सहित दण्डवत भूमिमें प्रणाम करके वेदसम्भव सूक्त द्वारा पार्व्वती-नन्दनका स्तव करने लगे। अगस्त्यने कहा, देवसमूहवन्दित पादकमल, सुधाकर सदृश आनन्दकर, गौरीके हृदयनन्दन, अमित विक्रम षड़ाननको नमस्कार है। तुम प्रणतगणके दुःखनाशक, समस्त मनो-रथके सम्पादक, परवञ्चकगणके रथके विनाशक, तारकासुरके हन्ता, तुमको नमस्कार है। तुम मूर्त्तामूर्त्त पञ्चभूत-स्वरूप, सहस्रमूर्त्ति सत्त्वरजस्तमोगुणात्मक, अथवा गुणसे प्रधान और शिखिवाहन, तुमको नमस्कार है। तुम वेदविद्गणके श्रेष्ठ, दिगम्बर, आकाशसंस्थित, हिरण्य-वर्ण, हिरण्यबाहु, हिरण्य और हिरण्य-रेता स्वरूप हो, तुमको नमस्कार है। तुम तपस्यास्वरूप, तपोधन तपफलके प्रतिपादक, सर्व्वदा कुमार, कामजेता और ऐश्वर्य्य-विरागी हो, तुमको नमस्कार है। तुम शर-जन्मा, तुम्हारी दन्तपंक्ति प्रभात सूर्य्यके न्याय अरुणवर्ण है, बालक होनेपर भी तुम्हारा पराक्रम बालकयोग्य नहीं, तुम षड़मातुर और अनातुर हो, तुमको नमस्कार है। तुम मीढ़ुष्टम,उत्तरमीढ़ु, गणपति और गण हो, तुमको नमस्कार है। तुम जन्मजरा-तिग, विशाख और शक्तिपाणि हो, तुमको नमस्कार है तुम सबके नाथके कुमार, क्रौञ्चारि, तारकविनाशन हो, हे स्वाहेय। गाङ्गेय! कार्त्तिकेय! ग्रैवेय! तुमको नमस्कार है। 'नमोनमः' ऐसा कहते हुए पूर्व्वोक्त प्रकारसे कार्त्तिकेयका स्तवकर अगस्त्यने ही तीन बार प्रदक्षिणा की। कार्त्तिकने कहा, "हे मुनीन्द्र, उपवेशन करो" यह कहकर पश्चात् फिर कहा, हे दे-वगणके सहाय कुम्भज मुने! तुम्हारो कुशल तो है? तुम इस स्थानमें आये हो, मैंने जाना। अविमुक्त महाक्षेत्रकी क्या पूछूं? वह क्षेत्र स्वयं महादेव कर्त्तृक रक्षित है, उसका निश्चय मङ्गल है। जिस स्थानमें आयुःक्षय होनेसे साक्षात् विरुपाक्ष, मुक्तिदाता हैं; मैंने भूर्लोक, भूवर्लोक, स्वर्लोक, पाताल वा ऊर्द्ध्वलोककी सदृश अमल क्षेत्र नहीं देखा। हे मुने! मैं उस अविमुक्त क्षेत्रकी प्राप्तिके निमित्त एकाचर होकर तपस्या करता हूं, किन्तु अभीतक मेरा मनोरथ सफल नहीं हुआ। पुण्य कर्म्म, दान जप और विविध यज्ञ द्वारा वह क्षेत्र नहीं मिलता, किन्तु एकमात्र महादेवके अनुग्रहसे मिल सकता है। हे मुने! सदुर्ल्लभ काशीवास ईश्वरके अनुग्रहसे ही सुलभ होता है कोटि कोटि सुकृत द्वारा नहीं होता। वह काशी विधाताकी सृष्टिसे भिन्न अन्य एक अनिर्व्व-चनीय सृष्टि है। स्वयं ईश्वर भी उस क्षेत्रके गुण कहनेमें असमर्थ हैं। मेरा क्या हो ज्ञानका दौर्व्वल्य है! भाग्यकी क्या ही अल्पता है! मोक्षका क्या ही माहात्म्य है! जो

काशीकी सेवा नहीं करता हूं। नित्य ही शरीर और इन्द्रिय जीर्ण होती हैं, मृत्युरूप मृगयूकर्त्तक आयुरूप मृग लक्षीकृत होता है। सम्पदकी आपदयुक्त, कायको अपायंग्रस्त और आयुकी चपलासदृश चञ्चल जानकर काशीका आश्रय करेंगे। जितने दिनतक आयुका अन्त न हो. उतने दिन काशी त्याग न करेंगे; मृत्यु, कलापरिमित समयकी भी संख्या करनेमें विस्मृत न होंगे। व्याधि सम्पूर्ण जराकी निकट निक्षेप करके अन्तप्रन्त पीड़ा देती है। देह तथापि नाना विषयकी चेष्टा करती है। किन्तु काशीसेवा नहीं करती है। तीर्थस्नान, जप और परोपकार वाक्य द्वारा अर्थ व्यतिरेक भी धर्म्म होता है। धर्म्मसे अर्थ स्वयं उपस्थित होता है। अर्थोपार्ज्जनोपाय व्यातीत भी धर्म्मसे निश्चय अर्थ होता है, अतएव अर्थ चिन्ता त्यागकर एकमात्र धर्म हीका आश्रय लेंगे। धर्मसे अर्थ, अर्थसे काम कामसे सर्व्व सुखका उदय होता है। अधिक क्या धर्मसे स्वर्ग भी सुलभ है; केवल एकमात्र काशी ही दुर्लभ है। महादेवने सर्व्वशास्त्रार्थ निर्णय करके उपायत्रयको पार्व्वतीके समक्ष साक्षात् निर्व्वाणका कारण कहा है। प्रथमोपाय पाशुपतयोग, द्वितीय प्रयागतीर्थ, तृतीय आयासशून्य अविमुक्त क्षेत्र है। श्रीशैल, हिमशैल, नाना आयतन, त्रिदण्डधारण, सर्व्वकर्म्मोंका सन्यास, नानाप्रकार तपस्या, नियम, यम, नदीसङ्गम, बहु अरण्य, इत्यादि मानसकार्य्य, भूमिसम्बन्धी धारातीर्थादि; उपरादि नव तीर्थ, पीठ संकल, अविच्छिन्न वेदपाठ, मन्त्रजप, अग्निमें होम, बहुदान, नानाक्रतु, देवतोपासना, त्रिरात्रोपवास, पञ्चरात्रोंपवास, आत्मानात्मविवेक, मुक्ति निमित्त कथित विष्णुकी आराधना, मोक्षप्रद अयोध्यादिपुरी, यह सभी काशीप्राप्तिकर है। जन्तु, काशीप्राप्त होने हीसे मुक्त होता है, और किसी स्थानमें नहीं होता। अतएव उस अविमुक्त क्षेत्र पवित्र, मुक्तिकारी और ब्रह्माण्डमण्डलमें विश्वेश्वरको एक ही प्रिय है। उस देशसे आनेकी वजहसे ही तुमसे कुशल प्रश्न करता हूं। हे सुव्रत! आओ आओ तुम्हारा गात्र स्पर्श करूं। मैं काशीसे आई हुई वायु स्पर्शकी भी इच्छा करता हूं; तुम उसी काशीसे आते हो, तुम्हारे स्पर्शकी क्या बात कहें! जो नियतेन्द्रिय हो काशीमें त्रिरात्रि भी वास करें, उनका चरणरेणु स्पर्श करनेसे भी पवित्रता हो सकती है। तुम तो उसी काशीमें वास करके पुण्यसमूह सञ्चय करते हो। उत्तरवाहिणी गङ्गामें स्नान करते करते तुम्हारा मूर्द्धजसमूह पिङ्गलवर्ण हुआ है। हे अगस्त्य! उस काशीमें ईश्वरसन्निधिमें तुम्हारा जो कुण्ड है, उसमें स्नान, उसका जल पीनेसे, उसी जलमें तर्पणादि तीर्थोदककार्य्य श्रद्धाके सहित श्राद्धविधानसे प्रित्रग-

याकी पूजा करनेसे मनुष्य कृतकृत्य होता है, और काशीका फल लाभ करता है। स्कन्द यह बात कहकर कुम्भोद्भवके सर्व्वगात्रको स्पर्शकर सुधासरोवरजलमें अवगाहन-जनित सुखको प्राप्त हुए; नेत्र मूंदकर 'जय विश्वेश्वर' कहकर स्थाणुके न्याय निश्चल हो कुछ क्षण ध्यान करने लगे। अनन्तर कार्त्तिकके ध्यान भङ्ग कर-ने उनका मन और मुख सुप्रसन्न होने-पर अगस्त्यने बालका समय समझकर गुहसे पूछा हे स्वामिन् षड़ानन! भगवान् महादेवने भगवती पार्व्वतीसे वाराणसी-का जो माहात्म्य कहा था,तुमने पार्व्वतीकी गोदमें बैठकर सुना है, वह कीर्त्तन करो; उस क्षेत्रकी महिमा श्रवण करनेको मेरी अत्यन्त रुचि होती है। कार्त्तिकने कहा, हे मैत्रावरुणे! भगवान्ने मेरी मातासे अविमुक्त क्षेत्रकी जो महिमा कीर्त्तन की है, मैंने माताके उत्सङ्गमें अवस्थान-कर जो श्रवण किया है, वह कहता हूं। हे अनघ! तुम उसे सुनो। अविमुक्त क्षेत्र परम गुह्य, उसके सिद्धि सन्नि-हित है; जिसमें साक्षात् विभु अवस्थान करते हैं। वह क्षेत्र भूर्लोक संलग्न नहीं; —अन्तरीक्ष गत है। अयोगिगण उसे देख नहीं सकते, योगिगण देखते हैं। हे विप्र! जो संयतात्मा और समाहित-चित्त हो उस क्षेत्रमें वास करते हैं, वह त्रिकाल भोजन करनेपर भी वायुभक्ष ऋ-षिके तुल्य हैं। जो निमेष मात्र भी अवि-मुक्त क्षेत्रमें ब्रह्मचर्य्य अवलम्बनपूर्व्वक वास करते, उन्हें महत्तपः अनुष्ठान करनेका फल होता है। जो लघु आहार और जिते-न्द्रिय होकर वहां एक मास वास करते, उन्हें समस्त पाशुपत व्रतके आचरण कर-नेका फल होता है। क्रोध और इन्द्रिय जय करके स्वधनसे शरीर शोषणपूर्व्वक परापवादरहित और कुछ दान करते हुए एक वर्ष काशीमें वास करनेपर, और जगहमें सहस्र वर्ष तपस्या करनेसे जो फल होता है, वही फल पाता है। जो क्षेत्रमाहात्म्यज्ञ हो यावज्जीवन वास करते हैं, वह जन्ममृत्युभयरहित होकर परम गति लाभ करते हैं। अन्य स्थानमें शत वर्ष योगाभ्यास करनेपर भी जो गति लाभ नहीं की जाती, इस स्थानमें ईश्वरप्रसादसे हेलासे वही गति प्राप्त होती है। ब्रह्मघाती मनुष्य भी यदि दैवात् वाराणसी पुरीको जावे, तो उस क्षेत्रके माहात्म्यसे उसकी उस ब्रह्महत्या पापसे निवृत्ति होती है। देहपतन पर्य्यन्त जो वाराणसी त्याग नहीं करते, ब्रह्मह-त्यासे उनके कोई पक्षतिका भी परिवर्त्तन नहीं होता। जो अनन्यचित्त हो उस क्षेत्रको त्याग नहीं करते, वह जरा, मृत्यु और सुदुःसह गर्भवाससे छूट जाते हैं। धीमान् मनुष्य यदि पृथ्वीमें पुनर्जन्मकी इच्छा न करे, तो देवर्षि सेवित अविमुक्त क्षेत्रको

न छोड़े। संसारभयमोचन अविमुक्त और विश्वेश्वरको पाकर न छोड़नेसे पुनर्जन्म नहीं होता। सहस्र सहस्र पाप करके यहांपर पिशाच होना भी अच्छा, शत शत यज्ञ करके काशी व्यतीत स्वर्ग भी अच्छा नहीं। मनुष्यके अन्तकालमें, जब मर्म भिद्यमान होता है और वात द्वारा तुद्यमान होता है, तब स्मृति विलुप्त होती है। उस उत्क्रान्ति कालमें स्वयं विश्वेश्वर साक्षात् होकर तारकब्रह्म उपदेश करते हैं, जिससे मनुष्य तन्मय होता है। मनुष्यता अनित्य और बहुपापसङ्कुल है, यह जानकर संसार-भय-नाशक अविमुक्त धामका आश्रय करेंगे। जो विघ्न द्वारा आलोड़ित होनेपर भी वाराणसी नहीं छोड़ते, वह मुक्तिको प्राप्त होकर दुःखान्त पाते हैं जो काशी महापाप-समूह नाशिनी, पुण्योपचयकारिणी और भोग या मुक्तिदायिनी है, कौन बुद्धिमान उस काशीका आश्रय न करेंगे? यह जान मेधावी मनुष्य अविमुक्तको न छोड़ेंगे; इसलिये, कि अविमुक्त क्षेत्रके प्रसादसे मुक्ति होती है। सहस्रवदन अनन्तदेव भी जिस माहात्म्यके कहनेमें असमर्थ हैं; मैं छः मुखसे अविमुक्त क्षेत्रके उस माहात्म्यको कैसे कह सकता हूं?

पञ्चविंश अध्याय समाप्त ॥ २५ ॥

षड्विंश अध्याय।

मणिकर्णिका वृत्तान्त।

अगस्त्यने कहा, हे भगवन् स्कन्द! यदि प्रसन्न हुए हो और मुझपर अनुत्तमा प्रीति हो तो जो मेरे हृदयमें अवस्थित है, वह कीर्त्तन करिये। किस समयसे अविमुक्त क्षेत्रने भूतलमें अत्यन्त प्रसिद्धि लाभ की है और क्योंकर वह मोक्षद है? क्यों इस त्रिलोकपूज्य तीर्थको मणिकर्णिका कहते हैं? यहां क्या पहले सुरधुनी नहीं थी? इस अविमुक्त क्षेत्रका नाम वाराणसी, काशी, रुद्रावास, और आनन्द-कानन क्यों हुआ? हे शिखिध्वज! क्यों यह महाश्मशान नामसे विख्यात है? मुझे यह सब सुननेकी इच्छा है, आप मेरे सन्देहका अपनोदन करिये। कार्त्तिकेयने कहा, हे कुम्भयोने! तुमने जो प्रश्न किया, उस प्रश्नका भार अतुलनीय है; अम्बिकाने महादेवसे यही प्रश्न किया था। जगन्माता पार्व्वतीसे देवदेवने जो कहा था, वह तुमसे कहता हूं। महाप्रलयके समय स्थावर जङ्गम नष्ट होनेपर सूर्य्य, ग्रह और तारकाशून्य समस्त ही तमोमय था। उस समय चन्द्र, अहोरात्र, अग्नि, भूतल नहीं था। सभी अप्रवृतत्त्व, विपतशून्य, अन्य तेजोविवर्जित था। उस समय द्रष्टा, श्रोता, स्प्रष्टा, रूप, शब्द और सूक्ष्म कोई वस्तु भी नहीं थी। गन्ध,

रूप, रस और दिङ्मुख कुछ भी न रहा। इस तरह ब्रह्मविद्यापनेय घोर आवरणात्मक अन्धकार होनेपर वही "तत्सत् ब्रह्म" जो श्रुति द्वारा अद्वितीय एक प्रतिपादित होता है; जो मनमें दिखाई नहीं देता, वाक्यका विषय नहीं, नामरूपवर्णशून्य है; न स्थूल है, न कृश; न ह्रस्व है, न दीर्घ; न लघु है, न गुरु; जिसको उपचय और अपचय नहीं है; देव भी चकितभावसे जिसको "अस्ति" कहकर अभिधान करते हैं; जो सत्य, ज्ञान, अनन्त, आनन्द और श्रेष्ठतेजः है; जो अप्रमेय अनाधार, अविकार, आकृतिशून्य, निर्गुण, योगिगम्य, सर्व्वव्यापी, एक कारणस्वरूप, विकल्परहित; आरम्भशून्य, निरामय और उपद्रवविवर्ज्जित है; संज्ञाशून्य जिस ब्रह्मकी यह सब संज्ञा विकल्पित होती है; वही एकचर द्वितीय इच्छा था। उन मूर्त्तिशून्य ब्रह्मने लीला द्वारा अपनी मूर्त्तिकी कल्पना की। वह सर्व्वग अव्यय परब्रह्म, सर्व्वैश्वर्य्यगुणयुक्ता सर्व्वज्ञानमयी, मङ्गलस्वरूपा, सर्व्वगामिनी, सर्व्वस्वरूपा, सर्व्वदर्शिनी, सर्व्वकारिणी, सबकी एकमात्र वन्दनीया, सबकी आदिभूता, सर्व्वदायिनी, सबकी सम्यक्चेष्टास्वरूपा, शुद्धरूपिणी, ऐश्वरी मूर्त्ति कल्पना कर अन्तर्हित हुए। हे प्रिये! मैं वही अमूर्त्त परब्रह्मकी मूर्त्ति हूं; नये और पुराने बुधगण मुझे ईश्वर कहते हैं। फिर मैंने अकेले स्वच्छन्दसे विहार करते करते अपने शरीरसे अपने शरीरकी अव्यभिचारिणी मूर्त्तिकी सृष्टि की। प्रधान, प्रकृति, गुणवती, श्रेष्ठा, माया, बुद्धितत्त्वकी जननी, विकृतिवर्ज्जिता तुम्हीं वह मूर्त्ति हो। कालस्वरूप आद्य पुरुष मैं हूं, और शक्तिरूपिणी तुम्हारे सहित युगपत् यह क्षेत्र मैं। निर्म्माण किया है। कार्त्तिकने कहा, वही शक्ति प्रकृति हैं, वह परमेश्वर ही पुरुष हैं, हे कुम्भयोने! विहारपरायण परमानन्दस्वरूप शिव और शिवा रचित स्वपादतलनिर्म्मित परमानन्दरूप, पञ्चक्रोश परिमाण यह क्षेत्र, प्रलयकालमें भी कभी विमुक्त नहीं होगा, इसलिये ही इसे अविमुक्त कहते हैं। जिस समय भूमिवलय नहीं थी, जिस समय जलकी उत्पत्ति नहीं हुई थी, उस समय ईश्वरने विहारके निमित्त यह क्षेत्र निर्म्माण किया था। यह कभी भी नास्तिकसे न कहना, कुम्भज! इस क्षेत्रका रहस्य कोई नहीं जानता। धर्म्मदर्शी, श्रद्धालु, विनीत, त्रिकालज्ञ, शिवभक्त, शान्त और मुमुक्षुसे कहना उचित है। उसी अवधिसे यह अविमुक्त कहा जाता है। यह शिवा और शिवका पर्य्यङ्करूप और निरन्तर सुखासद है, मूढ़बुद्धिगण जब शिव और शिवाके अभावकी कल्पना करते, तभी निर्म्माणकारी इस क्षेत्रके अभावकी कल्पना करेंगे। योगादिसे

अभिन्न होनेपर भी महेश्वरकी आराधना और काशीमें न जानेसे कभी भी निर्व्वाण लाभ करनेमें सक्षम नहीं होता। यह क्षेत्र मोक्षरूप आनन्दका हेतु है; इसलिये हो पिनाकीने इसका नाम आनन्द-कानन और फिर अविमुक्त रखा है। अथवा अविमुक्त नामसे इस क्षेत्रमें सब तरहके आनन्दकन्दका बीज और अङ्कुर होता है, इसलिये इसका नाम आनन्दकानन है! हे अगस्त्य! इस तरह अविमुक्त क्षेत्र आनन्दकानन नामसे विख्यात है। अब मणिकर्णिका जिस तरह हुआ है, वह कहता हूं। उस आनन्दकाननमें रममाण शिव और शिवाको कुछ और सृजन करनेकी इच्छा हुई। और सोचा, कि उसपर गुरुभार निक्षेपकर हम स्वच्छन्दचारी हो केवल काशी-मृतगणका निर्व्वाण करेंगे। वह इष्टवस्तु सर्व्वैश्वर्यनिधि हो सबका बकी सृजन, पालन और अन्तमें संहार करेगी। चिन्तातरङ्गदोलित, सत्त्वरूप रत्नपूर्ण, तमोरूप ग्राहसङ्कुल, रजोरूप विद्रुममण्डित चित्तसमुद्र स्थिरकर उसके प्रसादसे आनन्दकाननमें सुखसे रहेंगी। चञ्चलचित्त चिन्तातुर व्यक्तिको सुख कहां? जगतके धाता विभु धूर्जटिने चित्स्वरूप जगद्धात्रीसहित ऐसा निश्चयकर सुधास्रावी नयन अपने वामअङ्गमें व्यापारित किया। फिर एक त्रैलोक्यसुन्दर पुरुष आविर्भूत हुए। वह पुरुष शान्त सत्त्वगुणमें उद्रिक्त, गाम्भिर्य्यमें समुद्रविजयी, क्षमायुक्त, अनुपम, इन्द्रनीलद्युति श्रीमान् पुण्डरीकनयन थे। सुवर्णवर्ण सुश्री वस्त्रयुगलपरिधायी, प्रचण्ड बाहुद्वय शोभित और उनकी नाभि-हृदस्थित केशिशयसे उत्तम आमोद विकीर्ण होता था; सब गुणोंके एकमात्र आवास, सब कलाके एकमात्र निधि, एकमात्र सर्व्वोत्तम 'पुरुषोत्तम' शब्द जिनमें अनारोपित नाम है। फिर महामहिमभूषण, उन महापुरुषको देखकर महादेवने कहा, हे अच्युत! तुम महाविष्णु हो। वेद तुम्हारा निश्वास है, उससे सभी अवगत होंगे। देवदृष्ट मार्ग द्वारा यथोचित सब सम्पादन करो। महेश्वर बुद्धितत्त्वस्वरूप उन पुरुषसे यह कहकर शिवासहित आनन्दकाननमें गये। फिर भगवान् विष्णुने वह आज्ञा मस्तकपर रख कुछ समयतक ध्यानपर हो तपस्यामें ही मन अभिनिविष्ट किया। उसी स्थानमें चक्र द्वारा रमणीय पुष्करिणी खोदकर अपने अङ्गनिर्गत स्वेदसलिल द्वारा उसको भरा। उस चक्रपुष्करिणीके किनारे स्थाणुसदृश शरीर हो पञ्चाशत् सहस्र वर्षतक उग्र तपस्या की। फिर पार्व्वती सहित महादेवने तपःप्रभावसे प्रज्वलित निश्चल निमीलितनेत्र हृषिकेशका मस्तक आन्दोलनकर कहा, तपस्याका कैसा महत्त्व है? चित्तमें कैसा धैर्य्य है? क्या आश्चर्य्य है, विना ईंधनके निरन्तर अग्नि जलती है। हे महाविष्णो! और तपस्याका प्रयोजन

नहीं है। हे सत्तम! वर प्रार्थना करो। चतुर्भुज इस बातको महादेवका वाक्य जान नयनपद्म खोलकर उठे। श्रीविष्णुने कहा, हे देवेश! महेश्वर! यदि प्रसन्न हुए, तो यह वर दो, जिसमें भव नौके साथ तुम्हें सदा देखूं। हे शशिशेखर! जिसमें सब काममें सब जगहमें तुम्हें आगे विचरण करते देखूं, मेरा चित्त भ्रमर तुम्हारे चरणपद्मके मकरन्दमधुपानमें उत्सुक हो भ्रान्ति त्यागकर निश्चल हो जाय। श्रीशिवने कहा, हे हृषीकेश! हे जनार्दन! तुमने जो कुछ कहा, वही हो, दूसरा और वर भी देता हूं। हे सुव्रत! सुनो! तुम्हारी तपस्याका महत्त्व देखकर अहिरूप कर्णाभरणयुक्त मस्तक जो आन्दोलन किया है, उसी आन्दोलनवश कानसे मणिखचित, रमणीय मणिकर्णिका पतित हुई है! अतएव शङ्खचक्रगदाधर! तुम्हारे चक्रसे खोदनेके हेतु पुष्करिणी तीर्थ कहकर विख्यात पवित्र तीर्थ 'मणिकर्णिका' हो! जिस समय हमारे कानसे मणिकर्णिका पतित हुई है, उसी समयसे इस लोकमें यह मणिकर्णिका नामसे विख्यात हो। श्रीविष्णुने कहा, हे पार्व्वतीप्रिय! तुम्हारे मुक्ताकुण्डलपतनसे यह तीर्थ, इस लोकमें सब तीर्थोंसे श्रेष्ठ तीर्थ और मुक्तिक्षेत्र हो। इसलिये यह जगह परमज्योति विकाश पाती है; अतएव इसका और एक नाम काशी हो। हे जगतके रक्षकारी शिव! मैं और एक वरकी प्रार्थना करता हूं, अविचारितरूपसे दान करिये, जरायुज अण्डज आदि चार तरहके भूतग्राममें आब्रह्मस्तम्ब पर्य्यन्त जितने जन्तु संज्ञक हैं, वह सभी काशीमें मुक्तिलाभ करें। हे शम्भो! मणिकर्णिकाभूषण! जो महाप्राज्ञ आयुको क्षणविनाशी, विपदको विपुल, सम्पत्को अति भङ्गुर और मुक्तिको उसी उसी कामका परिणाम जानकर इस श्रेष्ठतीर्थमें सन्ध्या, स्नान, जप, होम, वेदाध्ययन, तर्पण, देवतापूजा, गो, भूमि, तिल, हिरण्य, अश्व, दीप, अन्न, अम्बर, भूषण और कन्यादान, अग्निष्टोमादि, सप्ततन्तु, व्रतोत्सर्ग, वृषोत्सर्ग लिङ्गादि स्थापन कर्म्म करेंगे, हे ईशान! आत्मघात प्रायोपवेशनके अतिरिक्त उनके और अज्ञानुष्ठित शुभकर्म्म मुक्तिरूप सम्पदके हेतु हों। जो जैसे कर्म्म करके कालान्तरमें अनुशोचना और स्थापन नहीं करते, तुम्हारे अनुग्रहसे उनका वह कर्म्म इस लोकमें अक्षय हो। जितने सब क्षेत्र हैं, जो होंगे और जो हुए हैं। हे सदाशिव! जैसे तुमसे उत्कृष्ट मङ्गल और कोई भी नहीं है, उसी तरह इस आनन्दकाननसे कोई भी क्षेत्र अधिक न हो। सांख्ययोग, आत्मावलोकन, व्रत तपस्या, दानके अतिरिक्त भी यह स्थान प्राणियोंकी श्रेय हो। शशक, मशक, कीट, पतङ्ग, तुरग, उरग, सभी पशुश्रेणी

काशीमें मृत होनेसे निर्व्वाणको प्राप्त हों। काशीनाम लेनेवालेका भी पाप चय हो। काशीनिवासी साधुश्रोंमें सदा ही सत्ययुग, उत्तरायण और महोदय हो। हे त्रिलोचन! सदाशिव! जितने मुक्तियुक्त पवित्र चेत्र हैं, उन सबसे यह चेत्र अधिकतर हो। चार वेदके अध्ययनसे जो पुण्य होता है, काशीमें लाख गायत्री जपने होसे वह पुण्य लाभ किया जाय। अष्टाङ्ग योगाभ्यास करनेसे जो पुण्य होता है, काशीसेवनसे उससे अधिक पुण्य हो। कृच्छ्र चान्द्रायणादि करनेसे जो पुण्य होता है, आनन्दकाननमें मात्र एक उपवासकर वह पुण्य लाभ किया जाय। और जगह एक सौ वर्ष तपश्चरण करनेसे जो श्रेय हो, वह काशीमें एक वर्ष मात्र भूमिशय्याशयन व्रत करनेसे हो। दूसरी जगह आजन्म मौनव्रत करनेसे जो फल हो, वह काशीमें एक पच अथवा एकाध सत्य बात बोलनेसे हो। दूसरी जगह सर्व्वस्व दान करनेसे, जो सुकृत उक्त हुआ है, काशीमें सहस्र ब्राह्मण भोजन करानेसे ही उसका अयुतगुण पुण्य हो। सब मुक्तिचेत्रकी सेवा करनेसे जो फल होता है, वह काशीमें पांच रात मणिकर्णिकी सेवा करनेसे ही हो! प्रयागस्नानसे जो मङ्गलप्रद पुण्य होता है, वह श्रद्धा सहित काशीका दर्शन करनेसे ही हो। अश्वमेध और राजसूय करनेसे जो पुण्य होता है, संयमविशिष्ट हो त्रिरात्र काशीवास करनेसे ही वह पुण्य प्राप्त हो जाय। सम्यक्रूपसे तुलापुरुष दान करनेसे जो पुण्य होता है, वह पुण्य श्रद्धाके साथ काशीका दर्शन करनेसे ही हो। देवदेव महादेवने विष्णुकी इस तरहकी वरप्रार्थना सुन प्रसन्नवदन हो कहा, "तथास्तु" हे महाबाहु विष्णो! तुम वेदोक्त विविध सृष्टि करो। पिताकी तरह सर्व्वभूतके पालक हो और विविध धर्म्म ध्वंसकारियोंका विध्वंस विधान करो। अधर्म्म-पथस्थितगणके नाश विषयमें हेतु मात्र हो; वह, तो अपने कर्म्म द्वारा ही निहत हैं। जैसे पक्का फल वृक्षसे विच्युत होता है, उसी तरह पापकारिगण स्वयं पतित होंगे। हे हरे! जो अपने तपोबलसे दर्पित हो तुम्हारी अवमानना करेंगे, उन लोगोंका मैं ही संहार करूंगा। जो उपपातकी या महापातकी हैं, वह काशीमें आकर पापमुक्त होंगे। इस पञ्चक्रोश-परिमित मेरे प्रिय चेत्रमें मेरी ही आज्ञा बलवती होगी; और किसीकी नहीं। हे सुनेत्रे पार्व्वती! मैंने फिर विष्णुसे कहा, कि त्रैलोक्य विभ्रमकारीमें अति उग्र तेजसे भ्रमण करते हुए अविमुक्तवासी पापकारी जन्तुगणका शासन करूंगा; हे विष्णो! उन लोगोंका शास्ता और कोई नहीं है। शत योजन दूर रहकर भी जो अविमुक्तकी स्मरण करेंगी, वह बहुत पापपूर्ण होने-

पर भी उस पापसे बाधित न होंगी। दूर रहनेवाले पापी भी यदि मृत्युके समय मेरे प्रिय अविमुक्त क्षेत्रको स्मरण करेंगे, तो वह पापसमूहमुक्त हो स्वर्गलाभ करेंगे। काशीस्मरणपुण्यसे स्वर्गभ्रष्ट होनेपर भी पृथिवीमें राजा हो, अनेक तरहके भोग अनुभवकर उसी पुण्यसे ही अविमुक्त क्षेत्रको प्राप्त हो निर्व्वाणपद लाभ करेंगे। हे शुचिस्मिते! इन्द्रिय और मनका संयमकर अनेक कालतक इस स्थानमें वास करके यदि दैवयोगसे दूसरी जगह प्राणत्याग करे, तब भी वह स्वर्गसुख भोगकर क्षितिपतीश्वर हो दूसरी बार काशीको प्राप्त हो फिर मुक्तिलाभ करेगा। हे विष्णो! अविमुक्त क्षेत्रमें वास करनेवाले कितने पवित्र व्यक्ति मरनेके बाद ही निर्व्वाणनिमित्त होते हैं, किन्तु पापी कालभैरव यातनाके बाद मोक्षदायक होते हैं। विष्णुने कहा, हे देवेश! जो व्यक्ति इस क्षेत्रके यथार्थ माहात्म्यसे अवगत नहीं हैं और अश्रद्धाके साथ इस जगह मरें, तो उनकी कौन गति होती है? शिवने कहा, हे सुव्रत! जनार्द्दन! वह व्यक्ति जो यहांकी महिमा न जानता हो दूसरी जगह समहापाप कर और इसके तत्त्वज्ञानसे शून्य होकर भी यदि इस जगह पञ्चत्व लाभ करे, तो उसके लिये जो गति उद्दिष्ट हुई है, वह सुनो। पापी व्यक्ति जब पञ्चक्रोशी काशीमें प्रवेश करता है, तभी उसके पापकसमूह दूर हो जाते हैं; भीतर नहीं आ सकते। काशीके पर्य्यन्तचारी त्रिशूलपाशपाणिके भयसे पातकसमूहके बाहर अवस्थान करनेपर, प्रवेश मात्रसे ही सब पापसे मुक्त है, सुतरां अपाप हो मणिकर्णिकामें स्नान करनेसे उत्कृष्टतम पुण्य प्राप्त होता है, सब तीर्थोंमें स्नान करनेसे जो पुण्य होता, मणिकर्णिकमें एकबार स्नान करनेसे भी वही प्राप्त होता है। सब तीर्थोंमें स्नान और सब वस्तु दान करनेसे जो पुण्य होता है, मणिकर्णिकामें श्रद्धाके साथ मृत्तिका, गोमय, कुश, दूर्व्वा, अपामार्ग और दर्भादि द्वारा स्वशाखोक्त स्नानमन्त्र पाठ सहित स्नान करनेसे प्राप्त होता है। अश्रद्धाके साथ भी मणिकर्णिकामें यथाविधान स्नान करनेसे स्वर्गप्राप्तिकर श्रेष्ठ पुण्य प्राप्त होता है। श्रद्धाके साथ यथाविधान स्नान और तिल, वर्हिः; और यव द्वारा देवादिका तर्पण करनेसे सर्व्वयज्ञ फल लाभ होता है। श्रद्धाशून्य व्यक्ति यदि विधिवत् स्नान, देव ऋषि पितृतर्पण, जप और देवपूजा करे, तो उसे भी सर्व्वयज्ञ फल प्राप्त हो। हे शिवे! जितेन्द्रिय हो मौन अवलम्बन सहित स्नानकर विश्वेश्वर दर्शन करनेसे वह वाचंयम व्यक्ति सब व्रतोंका पुण्य लाभ करता है। स्नान, देवपूजा, जप, मलमूत्र त्याग, दन्तधावन और होमकार्य्यमें यत्नके साथ मौन अवलम्बन करेंगे। उत्तम उपचार द्वारा एकबार विश्वेश्वरकी पूजा कर-

वैसे यावज्जीवन शिवपूजाका फल प्राप्त होता है। अविमुक्त क्षेत्रमें न्यायोपार्जित थोड़ा धन दान करनेसे फिर वह कभी दरिद्र नहीं होता। बहुत धन रहनेपर भी जो अविमुक्तमें दान नहीं करता, वह मूढ़ मनुष्य निधन होकर दूसरी जगह सदा शोक करता है। जितने रमणीय रत्न, गो, गज, अश्व, अम्बर हैं, वह सभी अविमुक्तवासियोंके मङ्गलके निमित्त विधाता द्वारा कृत हुआ है। जो नर विश्वेश्वर-प्रीतिके लिये काशीमें धन या निधन करते हैं, वह सर्व्वधर्म्मवित् धन्य हैं। हे उमे! काशीपुरीमें यह जो लिङ्गरूपधर विश्वेश्वर देव हैं, वह साक्षात् मेरे श्रेयके आस्पद हैं। पञ्चक्रोश परिमित अविमुक्त क्षेत्र कहा गया है। उसमें विश्वेश्वर नामक जो लिङ्ग हैं, उन्हें ज्योतिर्लिङ्ग समझना। सूर्य्यदेव एक जगह रहनेपर भी जैसे सबलोग उन्हें सर्व्वत्र देखते हैं, काशीमें विश्वेश्वर भी उसी तरह हैं। दूसरी जगह नानाजन्मार्ज्जित निर्व्विघ्न योग द्वारा जो फल लाभ होता है, काशीमें प्राण-त्याग करनेसे ही वह फल प्राप्त होता है। दूसरी जगह जितेन्द्रिय हो सब तरहकी तपस्यासे जो फल होता है, काशीमें एक रातमें ही वह लाभ होता है। जो नर क्षेत्र माहात्म्यसे अवगत नहीं और श्रद्धाशून्य हैं, वह भी किसी समय काशीमें आनेसे अपाप और वहां प्राणत्याग करनेसे मुक्त होता है। उग्र पापकर किसी समय काशी प्राप्त करके प्राण त्यागनेसे मेरे प्रसादसे मुक्ति प्राप्त करेगा। शिवा मेरी प्रसन्नताके कौन काशी प्राप्त करता है? हे विशालाक्षि! शिवा सूर्य्यके और दिनकृत् किसे कहते हैं? हे देवि! काशी प्राप्त न होनेसे कौन निरन्तर सुखी रहता है? इसके लिये ब्रह्मादि देवगण भी प्राकृत पाश द्वारा निरन्तर आवद्ध हैं। सत्त्व रजः तमः त्रिगुण, धर्म्म अर्थ कामादि प्रकृति महद्-हङ्कारादि चौबीस पाश द्वारा कण्ठ-सुदृढ़बन्ध मनुष्य काशीके सिवा क्योंकर मुक्त होंगे। योग नाना उपसर्गसङ्कुल है, तपस्या कष्ट-साध्य है; अतएव योग और तपस्यासे भ्रष्ट होकर बार बार गर्भक्लेश सहकर काशीमें पाप करके भी यदि मरें, तब भी रुद्र-पिशाच हो दूसरी बार मुक्तिलाभ करेंगे? पापकारिगण भी यदि दैवात् काशीमें मरें, तो उनका फिर नरकपतन नहीं होता। इसलिये, कि उनलोगोंका शास्ता मैं ही हूं। शरीर नाशकी अवश्यम्भाविता और गर्भकी दुःसह यातना सोच प्रभूत राज्य भी परित्याग करके काशीमें आश्रय लेंगी। सुदारुण यमदूतगण अतर्कित भावसे आकर पाशसे आवद्ध करके प्रहार करेंगे, ऐसा सोचकर शीघ्र काशीका आश्रय लेंगी। जिस जगह पापसे, यमसे और गर्भवाससे भय नहीं है, उस काशीमें कौन नहीं आश्रय लेंगी? आज, कल या परसों मरना

अवश्य ही है। अतएव जो समय मिले उसी समयमें काशी आश्रय विधेय है। मरनेके बाद जन्म और जन्मके बाद मरना है; अतएव जिस जगह मरनेसे फिर जन्म नहीं होता, पण्डितगण उसी काशीमें आश्रय लेंगे। पुत्र, वित्त, कलत्र नामक विष्णुमाया त्यागकर भवमोचनकारिणी वाराणसीमें आश्रय लेंगे। कार्त्तिकने कहा, "मैं युवा हूं, मेरा मरना दूर है" ऐसा विचार न करेंगे; किन्तु "घण्टाभरणयुक्त महिषाधिरूढ़ यम मुझे लेने आते हैं" यह विचार जीर्णपर्णकुटीके सदृश गृह त्यागकर तपस्यादि उत्कट श्रम स्वीकार न करके काशीमें जायेंगे। व्यासने कहा, हे सूत! कार्त्तिकने अगस्त्यसे यह पापनाशिनी कथा कहकर फिर भी कहा था।

षड्विंश अध्याय समाप्त ॥ २६ ॥

सप्तविंश अध्याय।

दशहरास्तोत्र।

स्कन्दने कहा, यह आनन्दकानन अविमुक्तक्षेत्र जिस प्रकार वाराणसी नामसे प्रथित हुआ, उस विषयमें शिवने जो कुछ कहा था, वही कहता हूं। शिवने विष्णुसे कहा था, हे त्रिलोकसुन्दर महाबाहु विष्णु! अविमुक्तक्षेत्रका वाराणसी नाम जिस प्रकारसे हुआ, वह सुनो। सूर्य्यवंशोद्भव महातेजा परमधार्म्मिक राजा भगीरथने, अश्वमेधीय अश्वरक्षणमें नियुक्त स्वीय पूर्व्वपुरुषगणको कपिल कोपानलसे दग्ध सुनकर, गङ्गा आराधनार्थ तपस्यामें कृतनिश्चय हो राज्यभार मन्त्रीके ऊपर विन्यस्त किया; फिर वह यशोराशि राजा, पितामहगणका उद्धार करनेकी इच्छुक होकर पर्व्वतश्रेष्ठ हिमालयको गये। हे विष्णो! ब्रह्मशापानल दग्ध और नितान्त दुर्गतिग्रस्त प्राणिगणको स्वर्गमें ले जानेको गङ्गाके सिवा और कौन समर्थ है? गङ्गा मेरी ही शिवस्वरूपिणी जलमयी मूर्त्ति हैं। परमा प्रकृति गङ्गा ही बहुब्रह्माण्डकी आधार हैं। गङ्गा शुद्धविद्यारूपा, शक्तित्रयसमन्विता, करुणात्मिका, आनन्दामृतरूपिणी और शुद्ध धर्म्मस्वरूपा हैं। मैं विश्वरक्षाके लिये परम ब्रह्मस्वरूपा इन जगन्माता गङ्गाको स्वीय लीलाक्रमसे धारण करता हूं। विष्णु! त्रैलोक्यमें जितने तीर्थ, जितने पुण्यक्षेत्र और सर्व्वलोकमें जितने धर्म्म हैं, दक्षिणायुक्त जितने सब यज्ञ हैं, जो तपस्या हैं, वह समस्त अङ्गसम्पन्न चतुर्व्वेद, हम तुम, ब्रह्मा, अन्य देवगण यावतीय पुरुषार्थ और विविध शक्ति, यह समस्त ही गङ्गामें सूक्ष्मरूपसे अवस्थित हैं। एक गङ्गामें स्नान करनेसे, सब तीर्थस्नानका फल, सर्व्वयज्ञानुष्ठानफल, और सर्व्वव्रताचरणका फल मिलता है। एक गङ्गास्नान करनेसे बहुतपश्चर्य्याफल, सर्व्वदानफल और योग-

नियमानुष्ठानका फल, मिलता है। गङ्गास्नायी लोग, सम्पूर्ण वर्ण, समस्त आश्रमी सर्व्ववेदज्ञ और सर्व्वशास्त्रार्थगामी, जनगणकी अपेक्षा श्रेष्ठ हैं। मानसिक, वाचिक और कायिक विविध दोषसे दुष्टलोग, गङ्गादर्शनमात्र होसे पवित्र होते हैं, इसमें संशय नहीं है। सत्ययुगमें सर्व्वत्र तीर्थ, त्रेतायुगमें केवल पुष्कर तीर्थ, द्वापरमें कुरुक्षेत्र तीर्थ और कलिकालमें केवल गङ्गा ही तीर्थ हैं। हे हरे! पूर्व्व जन्मकी अभ्यासवासनाके वशसे, मेरे परमानुग्रहके बलसे गङ्गातीरमें वास होता है। सत्ययुगमें ध्यान ही मोक्षका कारण है, त्रेतायुगमें तपस्या ही मुक्तिका कारण है, द्वापरयुगमें ध्यान तपस्या उभय मुक्तिका कारण है और कलिकालमें केवल गङ्गा ही मोक्षका कारण हैं। जो लोग देहत्याग न होनेतक गङ्गातीर नहीं छोड़ते, वही वेदान्तवित्, वही योगी और वही सदा ब्रह्मचर्य्यव्रती हैं। कलियुगमें पापाक्रान्तहृदय, परद्रव्यासक्तचित्त अवैधाचार मनुष्यगणकी बिना गङ्गाके गति नहीं है। "गङ्गा गङ्गा," इस प्रकार जप करनेसे, अलक्ष्मी, कालकर्णी, दुःस्वप्न और दुश्चिन्ता पास नहीं आती। विष्णो! सदा निखिल-भुवन-हितकारिणी गङ्गा, भावानुसारसे सर्व्वभूतको ऐहिक पारत्रिक फलदान करती हैं। हे हरे! यज्ञ, दान, तपस्या, योग जप, यम, नियमसे गङ्गासेवाके सहस्रांशके एकांशका फल भी नहीं होता। अष्टाङ्ग योगका प्रयोजन ही क्या है? तपस्यामें फल ही क्या है? यज्ञका ही क्या काम है? एकमात्र गङ्गातीरमें वास ही ब्रह्मज्ञानका कारण है। हे गोविन्द! गङ्गासे दूरस्थ लोग भी यदि गङ्गामाहात्म्यभिज्ञ हो क्यों न हों, गङ्गाभक्ति रहनेसे अयोग्य लोगोंपर भी गङ्गा प्रसन्न होती हैं। श्रद्धा ही परम सूक्ष्मधर्म्म, श्रद्धा ही ज्ञान, श्रद्धा ही परम तपस्या, श्रद्धा ही स्वर्ग और मोक्ष है; गङ्गा श्रद्धाबलसे ही प्रसन्न होती हैं। अज्ञान रागलोभादि द्वारा विमोहितचित्त मनुष्यगणकी धर्म्मके प्रति, विशेषतः गङ्गाके प्रति श्रद्धा नहीं होती। बहिःस्थित जल जिस प्रकार नारियलके अभ्यन्तरमें रहता है, उसी प्रकार ब्रह्माण्डके बाह्यस्थित परमब्रह्म स्वरूप जल ही जाह्नवी है। गङ्गासन्निधिकी अपेक्षा परमलाभ और कहीं भी नहीं है, अतएव गङ्गा उपासना ही कर्त्तव्य है; गङ्गा ही परम पुरुष हैं। हे हरे! पण्डित, गुणवान् और दानशील होनेपर भी शक्तिसत्त्वसे यदि गङ्गास्नान न करें, तो उनका जन्म विफल है। जो लोग कलिकालमें गङ्गाका भजन नहीं करते, उनका कुल, विद्या, यज्ञ, तपस्या और दानादि सब ही विफल है। विधिपूर्व्वक गङ्गाजलमें स्नान पूजा करनेसे जैसा फल होता है, गुणवान् पात्रकी अर्चनासे वैसा फल

नहीं होता। फिर तेजःस्वरूप अग्नि गङ्गाके गर्भसे हैं, यह मेरे वीर्य्यमें एकान्त संवृता हैं; सर्व्वदोषोंकी दाहिका और सर्व्वपापविनाशिनी हैं। गङ्गास्मरणमात्र होसे पापराशिपिञ्जर, वज्राहत पर्व्वतके सदृश शतधा विदीर्ण होता है। जो अकेले गङ्गामें गमन करता और भक्तिपूर्व्वक जो उनका अनुमोदन करता है, यह उभय व्यक्तिका ही फल समान हैं; इस विषयमें भक्ति ही कारण है। गमन, अवस्थान, जप, ध्यान, भोजन, जागरण, श्वासपरित्याग, वाक्यप्रयोग, सब समयमें ही जो मनुष्य गङ्गास्मरण करते, वह भव-बन्धनमुक्त होते हैं। जो लोग, पितृगणोद्देशसे गुड़, घृत, तिलमधुयुक्त पायस भक्तिभावसे गङ्गाजलमें निक्षेप करते हैं, हे हरे! उनके पितृगण, उस कार्य्यफलसे ही शतवर्ष तृप्त रहते और वह परितुष्ट होकर कर्म्मकर्त्ताकी विविध कामनाको पूर्ण करते हैं। जैसे एक लिङ्गको पूजा करनेसे निखिल जगतकी पूजा होती है, उसी प्रकार एक गङ्गास्नान करनेसे सर्व्वतीर्थसेवाका फल प्राप्त हो जाता है। जो मनुष्य गङ्गास्नान करके प्रत्यह पूजा करते, वह एक जन्ममें ही निश्चय परमामुक्तिको प्राप्त होते हैं। अग्निहोत्र, यज्ञ, व्रत, दान और तपस्या,—गंगातीरमें लिंगपूजाके कोटि भागके एक भाग समान भी नहीं है। गंगागमन निश्चय कर गृहमें तीर्थगमननिमित्तक श्राद्ध कर अवस्थित होनेपर, गंगागमनमें सम्यक् सङ्कल्प करनेसे ही पूर्व्वपुरुषगण हृष्ट होते हैं। पापगण, 'हाय कहां जांयगी' कहकर रोदन करते और शीघ्र लोभ मोहादि सहित यह कहकर बार बार मन्त्रणा करते हैं, कि जिसमें एक व्यक्ति भी गंगाको न जाने पावे, ऐसा विघ्न करेंगी; गंगामें तो यह पहुंचते ही हमलोगोंका उच्छेदसाधन करेंगी। गंगास्नानके लिये गृहसे निष्क्रान्त होनेपर, पापराशि निराश होकर प्रतिपद-क्षेपमें, क्रमशः उसके शरीरसे निर्गत होती है। हे हरे! पुण्यवान् मनुष्य, पूर्व्वजन्मार्ज्जित पुण्यबलसे ही लोभादि परित्यागकर सर्व्वविघ्नराशि दूरकर गंगाके सन्निहित होनेमें समर्थ होता है। वाणिज्य, दास्य, मूल्यग्रहण या अन्य किसी प्रसंगसे कामासक्त व्यक्ति भी यदि गंगास्नान करें तो वह भी स्वर्गमें जावेंगी। अनिच्छाक्रमसे स्पर्श करनेपर अग्नि जिस प्रकार दाह करती है, उसी तरह अनिच्छाक्रमसे स्नान करनेपर भी गंगा पाप नष्ट करती हैं। जबतक गंगा स्नान नहीं किया जाता, तबतक संसारमें घूमना पड़ता है, गंगास्नान करनेपर, देहको और संसारकष्ट अनुभव नहीं करना पड़ता। जो व्यक्ति दृढ़विश्वासपूर्व्वक गंगाजलमें स्नान करते हैं, वह मनुष्य चर्म्मावृत देवता हैं इसमें संशय नहीं।

गंगास्नानार्थ, वहिर्गत होनेपर यदि पथमें मृत्यु हो, तो वह व्यक्ति भी निःसंशय गंगास्नानका फल प्राप्त करता है। जो गङ्गामाहात्म्य पढ़ते या सुनते हैं, वह भी अशेष महापातकसे मुक्त होते हैं, इसमें संशय नहीं। हे विप्रो! दुर्बुद्धि, दुराचार, कुतार्किक और संशयात्मा मानवगण, मोहवशतः गंगाको दूसरी नदीके सदृश विवेचना करते हैं। पूर्व्वजन्मकृत दान, तपस्या, व्रत नियमके प्रभावसे, मानवगणकी इस जन्ममें गंगाके प्रति भक्ति होती है। ब्रह्मा, गंगाभक्तोंके लिये, इन्द्रादिलोकमें रमणीयभोगसम्पन्न हर्म्यराजि निर्म्माण कर रखते हैं। अणिमादि सिद्धिसमूह, सिद्धिके सम्पूर्ण उपाय, सर्व्वमणि प्रभृति बहुतर स्वर्गचिह्न, रत्नखचित प्रासादावली और चिन्तामणिसमूह, कलिकलुषभयसे गंगाजलमें अवस्थान करते हैं, इसलिये ही कलिकालमें इष्टसिद्धिदायिनी गंगाकी सेवा करना कर्त्तव्य है। सूर्य्योदयमें अन्धकारराशिकी तरह, वज्रपातके भयसे, पर्व्वतवृन्दकी तरह, गरुड़दर्शनसे, सर्पकुलकी तरह, पवनाहत मेघमालाकी तरह, तत्त्वज्ञानोदयसे अज्ञानकी तरह, सिंहदर्शनसे पशुगणकी तरह, सकल पाप, गंगादर्शनसे ही म्रियमाण होते हैं। उत्तम औषध सेवनसे सम्पूर्ण रोग जैसे नष्ट होते हैं, लोभाधिक्यसे जैसे गुणराशि लुप्त होती है, अगाधहृदमें अवगाहन करनेसे ग्रीष्मतापसमूह जैसे विदूरित होता है, अग्निस्फुलिंगसे जैसे तुलाराशि (रुईपुञ्ज) तत्क्षणात् भस्मसात् होती है, उसी प्रकार गंगाजल स्पर्शमात्रसे तत्क्षणात् असंशयसे दोषराशि विदूरित होती है। क्रोधोदयसे जैसे तपस्या नष्ट होती है, कामदोषसे जैसे विवेक विलुप्त होता है, नीतिके अभावसे जिस प्रकार लक्ष्मी चली जाती हैं, अभिमानसे जैसे विद्या नाश होती है, दम्भ कौटिल्य, और मायावशसे जैसे धर्म्मनाश होता है; उसी तरह गङ्गादर्शन मात्रसे ही पापराशि नष्ट होती है। विद्युत्स्फुरणचञ्चल दुर्लभ मनुष्यजन्म पाकर जो लोग गङ्गासेवन करते हैं, इस जगतमें वह अतीव बुद्धिमान हैं। जो सब मनुष्य निष्पाप हैं, वह पृथ्वीमें ही गङ्गाको, सहस्र सूर्य्यसदृशी परमःज्योतिस्वरूपा अवलोकन करते हैं। पापप्रतिहतनेत्र नास्तिकलोग गङ्गाको साधारणजलपूर्णा साधारण नदीके सदृश अवलोकन करते हैं। मैंने दया करके जनगणकी संसारमोचन करनेके लिये गङ्गातरङ्गरूपी स्वर्गसोपान निर्म्माण कर रखा है। श्रीमती गङ्गाके तीरमें, सर्व्वदा ही शुभ और सब लोग ही दानके पात्र हैं। सब यज्ञोंमें जैसे अश्वमेधयज्ञ, सब पर्व्वतोंमें जैसे हिमालय, व्रतसमूहमें जैसे सत्य, दान समुदायमें जैसे अभयदान, तपस्याओंमें जैसे प्राणायाम, सम्पूर्ण मन्त्रोंमें जैसे प्रणव, धर्म्मोंमें जैसे अहिंसा, सम्पूर्णकाम्य वस्तुओंमें जैसे लक्ष्मी, विद्यासमूहमें

रखती हूं।' हे त्रिकालज्ञान-विचक्षण! यदि कष्ट न हो, तो कहिये—चक्रपुष्करिणीतटमें विष्णुने जब तपस्या की, तब भगीरथ राजा कहां थे और भागीरथी ही कहां थीं?" हे सततनिर्म्मले! विश्वात्मिके! इस विषयमें सन्देह न करो। श्रुतिस्मृति-पुराणमें भूत भविष्यत् वर्त्तमान त्रिकालकी बात कही जाती है। भविष्यत्में अतीतवत् है; वर्त्तमानमें भूतवत् व्यवहार भी होता है। अतएव व्यर्थ संशय मत करो। यह कहकर शिवने फिर गङ्गा माहात्म्य कहा था। अगस्त्यने कहा, हे पार्व्वतीनन्दन! उस समय देवादिदेवने हरिसे गङ्गामाहात्म्य जैसे कहा था, वह सम्पूर्णरूपसे कहिये। स्कन्दने कहा, हे मुने! हे मैत्रावरुणि! देवदेवने पापकापह गङ्गामाहात्म्य जैसे कहा, वह सुनो। जो व्यक्ति, पितृगणको भवसागरसे उद्धार करते हैं। गङ्गातटमें, मनुष्य पितृकार्य्यार्थ जितने तिल लेते हैं, पितृगण उतने ही सहस्र वर्षतक स्वर्गवासी होते हैं। गङ्गामें देवगण, पितृगण, सदा अवस्थित हैं; इसलिये ही वहां उन लोगोंका आवाहन और विसर्जन नहीं है। पितृवंशके मृत व्यक्ति, मातृवंशके मृत व्यक्ति, गुरु, श्वशुर और बन्धुकुलके मृत व्यक्ति, मृत्युप्राप्त और और बान्धव, बिना दांत उगे मरनेवाला, गर्भमृत, अग्निदग्धमृत, विद्युत्पातहत, चौरनिहत, व्याघ्रनाशित,

अन्यान्य दंष्ट्रि-निपातित, उद्बन्धनमृत, पतित, आत्मघाती, आत्मविक्रयी, चौर, अयाज्ययाजक, रसविक्रयी, पापरोगी, अग्निदाता (जो घरमें आग दें) विषदाता और गोघाती आदि अपने वंशसम्भूत व्यक्ति, और जो असिपत्रवन नरकमें निपतित हैं, कुम्भीपाक नरकमें अवस्थित हैं, रौरव, अन्धतामिस्र या कालसूत्र नरक प्राप्त, जो अपने कर्म्मानुसार कई सौ वर्ष घूमते रहे या जो असंख्य व्यक्तिगण, निर्द्दिष्ट पक्षी, मृग, कीट, वृक्ष, वीरुध प्रभृति जन्मप्राप्त हैं, जो अति निकृष्ट है, घोरतर यमकिङ्करगण जिन्हें यमलोक ले गये हैं, जिनके बान्धव नहीं या हैं, जो दूसरे जन्ममें बान्धव थे, जिनका नाम नहीं मालूम और अपुत्रक हैं, ऐसे सगोत्रसम्भूत व्यक्ति और विष-हत, शृङ्गिविनाशित, कृतघ्न, गुरुघ्न, मित्रद्रोही, स्त्रीघाती, बालघाती, विश्वासघाती, असत्यपरायण, हिंसानिरत, सदापापरत, अश्वविक्रयी, परद्रव्यापहारी, अनाथ, कृपण, दीनहीन और मनुष्यजन्म लाभमें असमर्थ व्यक्तिगण भी मनुष्यके केवल एकबार यथाविधि गङ्गाजल द्वारा तर्पित होनेसे, स्वर्गलाभ करते हैं और स्वर्गवासिगण मुक्ति लाभ करते हैं। "पितृवंशे मृता ये च" इत्यादि मन्त्र उच्चारणकर जो व्यक्ति पितृतर्पण, श्राद्ध और पिण्डदान करते हैं, वह इस जगतमें विधिज्ञ कहे जाते हैं। त्रैलोक्यमें जितने कामप्रद तीर्थ हैं, वह सभी

काशीकी उत्तरवाहिनी गङ्गाकी सेवा करते हैं। गङ्गा सब जगह ही पावनी और ब्रह्महत्यादि-पापनाशिनी हैं; हे विष्णो! जहां वह उत्तरवाहिनी हैं, उस जगहमें विशेषतः हैं। देवगण, ऋषिगण और पितृगण यह यश गाते हैं, कि जिसमें काशीकी उत्तरवाहिनी गङ्गा हमारे नयन-पथवर्त्तिनी हों। जिसमें उत्तरवाहिनी गङ्गाजलसे सन्तप्त और त्रितापवर्ज्जित हो, विश्वनाथके प्रसादसे मुक्तिलाभ करें। हे हरे! ऐसा सब जगह निश्चय है, कि केवल गङ्गा ही मुक्तिदायिनी हैं; मेरे (शिवके) अधिष्ठानगौरवसे जो अविमुक्त क्षेत्रमें विशेष फल होता है। घोर कलि-युग जानकर गङ्गाभक्ति छिपाई गई है। एकमात्र मुक्तिपथप्रदर्शिनी गङ्गाको जनगण प्राप्त नहीं हो सकते। अनेक निश्रुत जन्म बहुयोनिमें भ्रमणशील कौन देही, गङ्गा-भक्तिके सिवा निर्व्वृतिको प्राप्त हो सकता है? हे विष्णो! पापविक्षिप्तचेताः संसार-रोगी अल्पबुद्धि मनुष्योंको गङ्गा ही परम औषध हैं। हे हरे! जो व्यक्ति गङ्गा-तीरके देवालय या टूटेफूटे घाटको मरम्मत करा देते हैं, मेरे लोकमें उनको अक्षय सुख मिलता है। जो व्यक्ति परार्थ या स्वार्थसे गङ्गा जानेका उद्देश करके फिर मोहप्रयुक्त हो न जावं, वह पितृगण सहित पतित होते हैं। हे हरे! जिन देहि-योंका सब काम गंगाजल द्वारा होता है, वह भूमितलमें मरनेपर भी देवता हैं। जो व्यक्ति बहुत पापसञ्चय करनेपर, चौथे-पनमें गङ्गासेवन करें, वह भी शुभ गतिको प्राप्त होते हैं। मनुष्योंकी अस्थि गङ्गा-जलमें जितने कालतक रहे, उतने सहस्र वर्ष, वह सादर स्वर्गलोकमें वास करते हैं। श्रीविष्णुने कहा, हे त्रिलोक-हित-कारिन्! देवदेव! प्रभो! जगत्पते! हे ईश्वर! यह कहिये, कि निर्म्मल गङ्गा-जलमें यदि अपमृत्युहत दुर्व्वृत्त दुरात्माकी अस्थि दैवात् पतित हो, तो उसकी परम गति होगी या नहीं? महादेवने कहा, हे अधोक्षज! इस विषयमें वाह्लीक ब्राह्मण सम्बन्धी इतिहास कहता हूं, एक चित्त हो सुनो। अगले समयमें कलिंग देशमें, वाह्लीक नामक, यज्ञसूत्रमात्रधारी लवणविक्रयी एक ब्राह्मण थे। उन्हें कुछ भी स्नान, सन्ध्या, वेदाक्षरका ज्ञान नहीं था। एक विधवा तन्तवाय-पत्नी उन वाह्लीकके गृहकी गृहिणी थी। नाथ! एकबार कलिङ्ग देशके अत्यन्त दुर्भिक्ष पीड़ित होनेपर, वह शूद्री जीवन-धारणका उपाय न पाकर पतिके साथ देशसे देशान्तर गई। क्षुधाकातर निःस-हाय वाह्लीक, दण्डकारण्यकी राहमें नर-मांसलोलुप बाघ द्वारा निहत हुए। एक गृध्र उनका बांया पैर लेकर उड़ा, मांसाशी दूसरे गृध्रसे और उससे आकाशमें युद्ध हुआ। आमिषाभिलाषी दोनों गृध्रके पर-

स्वर जलमें उत्पन्न होनेपर, पहले व्याघ्रके वक्षःपुटसे बांयीगुल्फ नीचे पतित हुआ। दोनो व्याघ्रोंके युद्ध करनेसे, व्याघ्रव्यापादित उन वाह्लीक विप्रका पादगुल्फ दैवयोगसे गङ्गामें ही पतित हुआ। यहां जिस समयसे अरण्यगत वाह्लीक विप्र, बाघ द्वारा निहत हुए, उसी समय वह, पाशपाणि-यमकिङ्कर द्वारा बांधे गये। वाह्लीक, कशाताड़ित, मर्म्मभेदक आरास्त्र द्वारा सर्व्वाङ्गसे व्यथित हो मुखसे रुधिर वमन करते यमदूत द्वारा यमके समीप लाये गये। हे श्रीपते! फिर यमराजने चित्रगुप्तसे पूछा, "इस ब्राह्मणका धर्म्माधर्म्म विचारकर शीघ्र कहो।" फिर हे हरे! सब प्राणीके सब समयके सर्व्वकर्म्माभिज्ञ विचित्रबुद्धि चित्रगुप्त यमुनाभ्राता शमनके पूछनेपर दुर्वृत्त द्विज वाह्लीकके आजन्मका अशुभकर्म्म उनसे निवेदन करने लगे, पहले किसीने इस-का गर्भाधान संस्कार कार्य्य नहीं किया; इसके अज्ञ पिताने गर्भपापशमनके लिये समस्त जीवनका सुखकर, जातकर्म्म भी नहीं किया; जिस नामकरण विधानसे बालक सर्व्वत्र विख्यात होता है, एकादश दिनको विधिपूर्व्वक इसका नामाकरण भी नहीं हुआ। इसके मन्दबुद्धि पिताने शुभ तिथि, शुभनक्षत्रादिको विदेशगमननिवारक विधिपूत निष्क्रामणसंस्कार भी चौथे महीनेमें नहीं किया। हे यमराज! जिस कामके प्रभावसे सदा मीठा भोजन करनेको मिलता है, छठे महीनेमें वह अन्नप्राशन कृत भी नहीं हुआ। जिस कामको कर-नेसे, शैशवय बालक और कुसुमवर्णी होते हैं, वह चूड़ाकरण संस्कार भी कुलाचारानुसारी वर्षमें नहीं हुआ। जिसके द्वारा कर्णयुगल सुश्रवण सम्पादक और सुवर्णग्राही होते हैं, शुभ समयमें वह कर्णवेध कार्य्य भी इसके पिताने नहीं किया। हे विष्णुरूप यम! ब्रह्मचर्य्यकी वृद्धि और वेदग्रहणका हेतुभूत उपनयन संस्कार आठवां वर्ष बीतनेपर भी नहीं हुआ। जिस कामको करनेसे पर परमा-श्रम गार्हस्थ्यमें प्रवृत्त किया जाता है, वह समावर्त्तन कार्य्य भी इसके पिताने नहीं किया। फिर कुलत्यागिनी अध्वचारिणी वृषलीके साथ किस तरह इस द्विजने विवाह किया। यह परदारापहारी वृषलीपति पांच वर्षसे आरम्भकर परस्वा-पहारी, दुराचार और द्यूतक्रीड़ासक्त हुआ। इस द्विजने लवणखानिमें रहनेके समय ऐक दिन दृढ़दण्ड प्रहारसे एक वर्षकी गऊको मार डाला था, गऊ उसका लवण लेहन करती थी। इस व्यक्तिने कई बार माताको लात भी मारी है, पिताके वचनका पालन कभी नहीं किया! इस कलहप्रिय दुर्म्मतिने (आत्महत्याके अभिप्रायसे) कई बार विषभक्षण किया है, परायेको राज-द्वारमें दण्डित करानेके लिये, आप ही आप अपना उदरविदारण किया है और; क्रीड़ा

कच्छप मात्रसे भी शूकर करीरादि उपविष्ट कई बार खाया है। हे सूर्यपुत्र! यह शिष्टनिन्दित दुष्ट पापिष्ठ (आत्मघातादिके लिये अपनी इच्छासे) अग्निदग्ध हुआ है, कुक्कुरभक्षित हुआ है, शृंगिगण द्वारा सींगके अगले भागसे कई जगह विदीर्ण हुआ है, कईबार सर्पों द्वारा डसा गया है, काष्ठ इष्टक और लोहे द्वारा भी इसने सदा सर्वदा अपना अनिष्ट साधन किया है। साधुगण, सदा जिस मस्तककी अर्च्चना करते हैं, इस दुरात्माने वारंवार उसी मस्तकको कूटा है। यह मन्द ब्राह्मण, गायत्री भी नहीं जानता; इस दुर्बुद्धिने इच्छासहित अकेले मत्स्य मांस खाया है। इस व्यक्तिने कई बार अपने लिये पायस पाक बनाया है। इस मूढ़ने सतत लाक्षा, लवण, मांस, दूध, दही, घृत, विष लोह, अस्त्र, दासी, गो, अश्व, केश और चमड़ा बेचा है। इस दुरात्माकी देह शूद्रान्नपुष्ट है; यह व्यक्ति, पर्व्व और दिनको मैथुन करता और देव पैत्र कर्म्मसे पराङ्मुख था। इस व्यक्तिने शताधिक मृगपक्षी वध किया है, अकारण वृक्षच्छेदन किया है, इसका चित्त बहुत निर्दय है। नित्य निजबन्धुमें भी उद्वेग उत्पादन करता, सदा झूठी बात, सदा हिंसा इसका काम था। इसने कभी दान नहीं किया, पिशुनता इसका धर्म्म था; शिश्न और उदर ही इसका सार था। हे सूर्यनन्दन! और क्या कहें, यह व्यक्ति साक्षात् पापमूर्त्ति है; रौरव, अन्धतामिस्र कुम्भीपाक, अतिरौरव, कालसूत्र, कृमिभक्ष, पूयशोणितकर्द्दम, घोरतर असिपत्रवन, यन्त्रपीड़, सुदंष्ट्र, अधोमुख, पूतिगन्ध, विष्ठागर्त्त, पुत्रभोजन, सूचीभेध्य, सन्दंश, लालाभक्ष और क्षुरधार इनमें प्रत्येक नरकमें एक कल्पतक इसको निपातित करिये। चित्रगुप्तसे यह सुनकर धर्म्म-राजने उस दुराचार ब्राह्मणको भर्त्सनाकर भ्रभङ्गीद्वारा किङ्करगणको बुलाया। तब किङ्कर लोग वाहीकको बांधकर, जिस जगह पापियोंका उच्च आर्त्तनाद होता था, उस लोमहर्षण नरकालयमें ले गये। ईश्वरने कहा, वाहीकके बहुत कड़ी यातनामें अवस्थित होनेपर, गृध्र मुखसे उस दुष्ट द्विजका पादगुल्फ तत्क्षण-पुण्य-फल-सम्पादक निर्म्मल गङ्गाजलमें पतित हुआ! हे हरे! उसी समय ही घण्टा, विलम्बित बहु-दिव्यरमणी-परिवृत विमान देवलोकसे आया। हे हरे! गङ्गामें अस्थिपतन प्रयुक्त द्विज वाहीकने दिव्य गन्धानुलेप और वेषधारी हो देवयानमें चढ़कर, अप्सरागणकी व्यजनवात भोग करते स्वर्गभवनकी ओर गमन किया। स्कन्दने कहा, हे कुम्भसम्भव! अनिर्व्वचनीय इस वस्तु शक्तिका अद्भुत विचार है। यह गङ्गा सदाशिवकी द्रवरूपिणी अनिर्व्वचनीया परमाशक्ति हैं। करुणामृतपूर्ण देवदेव शम्भु ने जगदुद्धारके लिये इन गङ्गाका प्रव-र्त्तन किया है। जगतमें जो अपूर्व कितनी

ही समस्त बहुत नदियां हैं, सज्जनलोग त्रिपथगामिनी गङ्गाकी वैसी विवेचना न करें। हे मुने! गङ्गाधर शिवने दया करके देवाहार निष्पीड़न हो, उनके द्रव्य द्वारा यह गङ्गा निर्म्माण की है। शङ्करने सब प्राणियोंके प्रति दया करके योगोपनिषद्का सार आकर्षणकर इन सरिद्वराका निर्म्माण किया है। जिन जिन देशोंमें गङ्गा नहीं हैं, वह सब देश, चन्द्रहीन रात्रि और पुष्पहीन वृक्षकी तरह है। हे हरे! गङ्गाप्रवाह-विहीन समस्त दिग्देश नीतिहीन सम्पत्ति और दक्षिणाहीन यज्ञकी तरह हैं। जिस जिस दिक्में गङ्गा नहीं हैं, वह सब सूर्य्यहीन गगनाङ्गन, रातमें दीपहीन गृह और वेदहीन ब्राह्मणकी तरह है। कोई व्यक्ति शरीरशोधक सहस्र चान्द्रायण करे और कोई व्यक्ति गङ्गाजल पान करे, तो उन दोनोमें गङ्गाजलपानकर्त्ता ही श्रेष्ठ है। कोई व्यक्ति (तपस्यामें) शत सहस्र वर्ष एक पैरसे अवस्थित रहे, और कोई व्यक्ति एक वर्ष गङ्गाजल पान करे, इन दोनोमें गङ्गाजलपानकर्त्ता ही श्रेष्ठ है। हे हरे! जो मनुष्य कई सौ वर्ष अधःशिरा हो लम्बमान रहे, उसकी अपेक्षा वह श्रेष्ठ है, जो गङ्गाकी बालूपर शयन करे। इस कलिकालमें जिस तरह जाह्नवी गङ्गा पापतापतप्त प्राणियोंका पापताप हरण करती हैं, वैसा और कोई नहीं कर सकता। गरुड़को देखनेसे ही जिस तरह फणिगण निर्व्विष होते हैं, उसी तरह गङ्गादर्शनमात्रसे ही पापराशि निष्प्रभ होती है। जो मनुष्य, गङ्गानीरसम्भूत मृत्तिका मस्तकपर धारण करते हैं, वह निश्चय ही तमोनाशके लिये सूर्य्यमण्डल धारण करते हैं। व्यसनाक्रान्त, दरिद्र और पापी व्यक्तिकी, केवल गङ्गा ही गति हैं, और किसी तरहसे कोई भी गति नहीं कही गई है। इस विषयमें संशय नहीं, कि माहात्म्य सुनने, स्नानादिमें एकान्त कामना, दर्शन, स्पर्श, जलपान और अवगाहन करनेसे गङ्गा, पुरुषके दोनो कुलका उद्धार करती हैं। गङ्गाका नाम-कीर्त्तन, दर्शन, स्पर्श, गङ्गाजलपान और अवगाहनसे पापहानि और दशगुण पुण्यसञ्चय होता है। गङ्गामें जानेसे, जो फल मिलता है, पुत्र धन और सत्कर्म्म प्रभृति दूसरे उपायसे वह फल नहीं प्राप्त होता। जो शक्ति रहते भी मुक्तिप्रसवनी गङ्गामें स्नान नहीं करता, वह जन्मान्ध, पङ्गु और जीवनमृत है। हे हरे! गङ्गामाहात्म्य प्रकाशिनी निशितार्थ प्रतिपादिका श्रुति सुनो। इस श्रुतिको सुननेसे मानवप्रधान, गङ्गा आश्रय करता है। उस श्रुतिका अर्थ यह है,—"लक्ष्मीप्रदायिनी मधुमती, पयस्विनी अमृतरूपा, ऊर्ज्जस्वती स्वर्गसम्भूता गङ्गाका जो आश्रय करते हैं, वह स्वर्ग अथवा मोक्ष प्राप्त होते हैं। ऋषिसेविता अतिपुण्यप्रवाहिणी

पुरातनी विष्णुपदी जाह्नवीका जो सर्व्वान्तः-करणसे मन ही मन आश्रय करते, वह ब्रह्मलोक जाते हैं। माता जैसे पुत्रगणको सुखमें रखती हैं, उसी तरह इस समस्त लोकको सर्व्वगुणशालिनी गङ्गा स्वर्गसुख-भोगी करती हैं, इष्ट ब्रह्मलोक जानेके अभिलाषी व्यक्तिगण जितेन्द्रिय हो इन गङ्गाकी सेवा करें। आत्मशुद्धिकाम व्यक्ति, देवगण-सेविता कार्त्तिकेय जनयित्री इरावती (भूमिव क्य और जो लक्ष्मी दान करती हैं) शिष्ट-सेव्या अमृतस्वरू पिणी ब्रह्मकान्ता विश्वरूपा, गङ्गाका आश्रय करें।" मनुष्य, ब्रह्मचारी और एकाग्रचित्त हो गङ्गामें स्नान करनेसे निष्पाप होते हैं और वाजपेय यज्ञका फल लाभ करते हैं। गङ्गाके आश्रित होनेसे, वह उन व्यक्तिगणका भी सदा उद्धार करती हैं, जो अशुभ-कर्म्मग्रस्त, महासमुद्रमें मग्नप्राय और नरक पतनो-न्मुख हैं। जैसे ब्रह्मलोक, सब लोकसे उत्तम है, उसी तरह जाह्नवी समस्त सरित्सरोवरकी श्रेष्ठा हैं। और कहीं सम्यक् सङ्कल्प करके तीन वर्ष तपस्या कर-नेसे जो फल होता है, गङ्गामें भक्तिपूर्व्वक आधी घटि, करनेसे वह फल होता है। रातमें चन्द्रोदय होनेपर गङ्गातीरमें जो प्रीति होती है, अक्षयसुखभोगपरायण स्वर्गवासियोंको भी वह प्रीति नहीं होती। जरारोगयुक्त अपने सब देहको, धैर्य्यस-हित गङ्गाजलमें तृणवत् परित्याग करनेसे वह अमरावतीको जाता है। चन्द्रमण्डल जिनके जलसमूहसे प्लावित हो रातमें अत्य-धिक शोभासम्पन्न होता है, जिनके जलमें स्नान करनेसे, सद्यः पाप विनष्ट होता है और तत्क्षणात् महत् श्रेयःप्राप्ति होती है, हे अच्युत। उनका जल, वंशसम्भूत व्यक्ति-गणके अन्नासहित पितृगणको प्रदान कर-नेसे तीनवर्ष पितृगणको परम तृप्ति होती है, हे विष्णो। जो पृथिवीस्थित मर्त्त्यका, अधःस्थित सरीसृपका और स्वर्गमें स्वर्गवा-सियोंका निस्तार करती हैं, वह त्रिपथगा नामसे अभिहित हैं, वह तीर्थोंमें उत्तम तीर्थ हैं, नदियोंमें उत्तमा नदी हैं। वह गङ्गा, सब प्राणिगणको ही नहीं, महापात-कियोंको भी स्वर्ग ले जाती हैं। हे विष्णो! स्वर्ग भूतल आकाश—सर्व्वत्र जो बहुकोटि तीर्थ हैं, वह सभी गङ्गामें अव-स्थित हैं। जो व्यक्ति आत्मघात न करके ज्ञानपूर्व्वक गङ्गामें पञ्चत्वको प्राप्त होते, वह स्वर्ग प्राप्त होते हैं, उन्हें फिर नरक देखना नहीं पड़ता। गङ्गा ही सब तीर्थ हैं, गङ्गा ही तपोवन और गंगा ही सिद्ध-क्षेत्र हैं, इस विषयमें विचार नहीं करना चाहिये। हे कुम्भसम्भव! जहां वृक्ष-राजि कामफलप्रसवी हैं, वह भूमि सुवर्ण-मयी है; गङ्गा नहानेवाले मनुष्य वहीं वास करें। जो मनुष्य सुशीला पयस्विनी सवत्सा धेनु, वस्त्ररत्नसे "अलङ्कृत कर" गङ्गा-

जैसे अस्त्रविद्या, स्त्रियोंमें जैसे गौरी, हे पुरुषोत्तम! सम्पूर्ण देवतोंमें जैसे तुम, और सब व्रातोंमें जैसे शिवभक्त प्रधान हैं, उसी प्रकार सब तीर्थोंमें गङ्गा तीर्थ ही श्रेष्ठ है! हे हरे! जो महामति तुममें और मुझमें अभेदज्ञान रखते हैं, वही शिवभक्त हैं, वही महापाशुपत हैं। यह पुण्यवाहिनी गङ्गा, पापरूप तूलपटलको उड्डयनकारिणी महावात्या; यह पापपादपच्छेदनमें कुठाररूपिणी और पापदारुचय कारनमें दावानलस्वरूपा हैं। नानारूपसम्पन्न पितृगण सर्व्वदा यह सब गाथा कीर्तन करते हैं, कि हमलोगोंके वंशमें गङ्गास्नायी कौन सन्तान जन्मग्रहण करेगा; दीन, अनाथ और दुःखियोंको परितृप्त करके भी श्रद्धा और विधिपूर्व्वक गङ्गास्नान करके देवता, ऋषिगणका तर्पण करनेके पश्चात् हमलोगोंको अञ्जलिपूर्ण जल प्रदान करेगा, शिव और विष्णुके प्रति समदर्शी, भक्तिपूर्व्वक शिवविष्णुमन्दिरनिर्म्माता शिवविष्णुमन्दिरमार्ज्जनादिकारी सन्तान हमलोगोंके वंशमें हो। इच्छासे हो या अनिच्छासे ही हो, गङ्गाजीमें मरनेसे, क्या मनुष्य, क्या तिर्य्यक्जाति, आदि कोई क्यों न हो, उसे और नरक दर्शन नहीं होता। जो लोग गङ्गाजीके तीरमें रहकर और तीर्थकी प्रशंसा करते हैं और गङ्गाजीका आदर नहीं करते, वह लोग नरकमें जाते हैं। जो पुरुषाधम हमारे, तुम्हारे और गङ्गाके प्रति द्वेष करते हैं, वह आत्मीयगणके सहित घोर नरकमें जाते हैं। षष्टि सहस्र मदीयगण, सर्व्वदा गङ्गाकी रक्षा करते हैं; वह अभक्त और पापिष्ठगणके गङ्गावासमें विघ्न करते हैं। वह काम, क्रोध महामोह और लोभादि निशित शरनिकर द्वारा मनुष्यगणकी गङ्गावासबुद्धि छेदन करते हैं और गङ्गावास करने भी नहीं देते। जो लोग गङ्गावास करते हैं, वही मुनि, वही पण्डित, और उसी मनुष्यको ही धर्म्म, अर्थ काम, मोक्षमें कृतार्थ जानेंगे। एकबार गङ्गास्नान करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल होता है, गङ्गामें पितृतर्पण करनेसे, उनलोगोंका नरकसागरसे उद्धार किया जाता है। जो पुण्यवान् व्यक्ति एक मास निरन्तर गङ्गास्नान करते, वह व्यक्ति जितने दिन इन्द्र रहते हैं, उतने दिन पूर्व्वपुरुषोंके साथ इन्द्रलोकमें वास करते हैं। जो निरन्तर एक वर्ष गंगा स्नान करते, वह मनुष्य विष्णुलोकको प्राप्त हो सुखसे वास करते हैं। जो मनुष्य यावज्जीवन प्रत्यह गङ्गास्नान करता है, उसे जीवन्मुक्त ही जानो और देहान्त होनेपर वह निर्व्वाण मुक्ति हो पाता है। गङ्गाजलमें, तिथि, नक्षत्र, पर्व्वादिकी अपेक्षा करनेका प्रयोजन नहीं; गङ्गास्नान करने होसे सञ्चित पाप विनष्ट होते हैं। जो मनुष्य सुखसेव्य गङ्गातीरका आश्रय

नहीं करते, वह पण्डित होनेपर भी मूर्ख हैं, भक्तियुक्त होनेपर भी अभक्त हैं। यदि गङ्गासेवा ही न की गई, तो रोगशून्य जीवनका फल क्या है, विस्तृत सम्पत्तिका ही क्या प्रयोजन और निर्म्मल बुद्धिकी ही क्या आवश्यकता है? जो मनुष्य गङ्गाप्रतिमूर्त्तिके लिये मन्दिर निर्म्माण करा देते हैं, वह विविध प्रकारके भोग करके परलोकसे गङ्गालोकमें वास करते हैं। जो लोग सादर, नित्य गङ्गामाहात्म्य श्रवण कर धनदान द्वारा पाठकको सन्तुष्ट करते हैं, उन लोगोंको गङ्गास्नानका फल होता है। जो मनुष्य, पितृगणके उद्देशसे गङ्गाजल द्वारा शिवलिङ्गको स्नान कराते हैं, उनके पितृगण, महानरकमें रहनेपर भी सन्तोष पाते हैं। आठबार मन्त्रपूत सुगन्धि वस्त्रपूत गङ्गाजल द्वारा लिङ्गको स्नान करानेसे घृत द्वारा स्नान करानेकी अपेक्षा अधिक फल है, पण्डित लोग यह कहते हैं। जो मनुष्य गङ्गाजलके सहित निम्नलिखित अष्टविधिद्रव्य, साढ़े द्वादश पल परिमित पात्रमें लेकर सूर्य्यको एकबार मात्र अर्घ्य देते हैं; वह स्वयं पितृगणके सहित, अति तेजस्वी विमान योगसे जाकर सूर्य्यलोकमें सम्मानपूर्व्वक वास करते हैं। जल, गो-दुग्ध, कुशाग्र, गव्यघृत, मधु, गव्यदधि, रक्त करवीर और रक्तचन्दन यह अष्टाङ्ग अर्घ्य सूर्य्यको अतीव सन्तोषप्रद जान कहा गया है। हे विष्णो! अन्य जलसे गङ्गाजलमें कोटि गुण फल है।

जो सुबुद्धि मनुष्य हैं और शक्त्यनुसार गङ्गातीरमें देवालय निर्म्माण कराते, उन्हें अन्य तीर्थकी प्रतिष्ठाकी अपेक्षा उससे कोटिगुण अधिक फल होता है। अन्यत्र अश्वत्थ, वट, आम्र प्रभृति वृक्षारोपणसे जो फल होता है और अन्यत्र वापी, कूप, तड़ाग, पानीयशाला, अन्नसत्र और पुष्प वाटिकादि प्रतिष्ठासे जो पुण्य होता है, गङ्गादर्शनमात्रसे वही पुण्य मिलता है, गङ्गास्पर्शसे तदपेक्षा अधिक पुण्य है। कन्यादान गोदान अन्नदानसे जो पुण्य है, गण्डूषमात्र गङ्गाजल पीनेसे उससे शतगुण पुण्य होता है। हे जनार्द्दन! सहस्र चान्द्रायणसे जो पुण्य होता, गङ्गाजल पानसे तदपेक्षा अधिक फल प्राप्त होता है। हे हरे! भक्तिपूर्व्वक गङ्गास्नानका और क्या फल कहें, अक्षय स्वर्ग अथवा निर्व्वाण-मुक्ति ही इसका फल है। जो मनुष्य, गङ्गायुगल पादुकाकी नित्य पूजा करते, वह दीर्घ आयु, पुण्य, धन, सत्पुत्र स्वर्ग और मुक्ति पाते हैं। हे हरे! गङ्गाके तुल्य, कलिकलुषनाशी तीर्थ और नहीं है और अविमुक्त क्षेत्रके समान मुक्तिप्रद क्षेत्र और नहीं है। यमकिङ्करगण, गङ्गास्नानरत मनुष्यके दर्शनमात्र होसे सिंहदर्शनसे मृगगणके सदृश दश दिशाको भागते हैं। गङ्गाभजननिरत, गङ्गातीरवासी, मनुष्यकी यथोचित पूजा करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल होता है। पवित्र गङ्गातीरमें, भक्ति-

दूर्वा, गो, भूमि और सुवर्ण दान करनेसे, मनुष्य दुःखसङ्कुल संसारमें और जन्म-ग्रहण नहीं करता। वस्त्रदानसे दीर्घायु, पुस्तक दानसे ज्ञान, अन्नदानसे सम्पत्ति, और कन्यादानसे कीर्त्ति मिलती है। हे हरे! अन्यत्र व्रत, दान, जप तप, आदि जो कर्म किया जाय, गङ्गा तीरमें करनेसे वह समस्त ही कोटि गुणाधिक्य होता है। हे विष्णो! जो मनुष्य गङ्गातीरमें यथाविधि सवत्साधेनु दान करते, वह, कामधेनु-दाताके सदृश पितृगण, सुहृद बान्धवगणके साथ साथ सर्व्वरत्नालङ्कृत और सर्व्वसमृद्धिसम्पन्न होकर धेनु रोम-सम-संख्यक युग गोलोकमें अथवा मेरे लोकमें देवगणके भी अलभ्य नानाविध कामभोग्य समुदय भोग करनेके पश्चात्, धनधान्यसमृद्ध, रत्नकाञ्चनसम्पन्न, शीलविद्यासमन्वित सद्वंशमें जन्म ग्रहण करते हैं। वहां पुत्र-पौत्रसमन्वित होकर विपुल भोग भाग्यराशि भोग करनेके पश्चात् पूर्व्वजन्म-वासनावशसे काशीधाममें उत्तरवाहिनी गङ्गाके समीपस्थ होकर विश्वेश्वरकी आराधना करते हुए यथाकालमें देहान्त होनेपर मुक्ति पाते हैं। गङ्गातीरमें षष्टि हस्त परिमित भूभाग जो मनुष्य दान करते हैं, उनका पुण्यफल सुनो; हे हरे! वह मनुष्य, उक्त भूभागके त्रसरेणु सम-संख्यक युग, इन्द्रचन्द्रलोकमें हृदयप्रिय भोग्यनिचय भोग करनेके पश्चात्, महाधर्म-परायण, सप्तद्वीपाधिपति होकर सम्पूर्ण नरकस्थ पितृगणको स्वर्गमें पहुंचाते हैं और स्वर्गस्थ सकल पितृगणको मुक्तिलाभ करा वह महातेजाः स्वयं अन्तमें ज्ञानासि द्वारा पाञ्चभौतिक अविद्या छेदन कर, परम वैराग्य लाभ करते हुए उत्तम योगयुक्त होकर अथवा अविमुक्त क्षेत्र पाकर परम ब्रह्मको पाते हैं। हे हरे! हे विष्णो! जो मनुष्य गङ्गातीरमें अशीति रत्तिका परिमित अत्युज्ज्वलवर्णसम्पन्न सुवर्ण भी, वर्णश्रेष्ठको दान करते, वह मनुष्य ब्रह्माण्डमध्यवर्ती सर्व्वलोकमें सर्व्व-पूजित और सर्व्वैश्वर्य्यसम्पन्न होकर मणि-काञ्चनखचित सर्व्वगामी शुभ विमानमें अधिष्ठानकर महाप्रलय काल पर्य्यन्त मनोहर भोग्यसमूहको भोग करते हैं, अनन्तर जम्बूद्वीपमें प्रतापसम्पन्न एकच्छत्री राजा होकर अविमुक्त क्षेत्र लाभकर निर्व्वाण पदको प्राप्त होते हैं। जन्म-नक्षत्रमें भक्तिपूर्व्वक गङ्गास्नान करनेसे आजन्म-सञ्चित पापराशिसे क्षणमें मुक्ति-लाभ होता है। वैशाख, कार्त्तिक और माघ मासमें गङ्गास्नान दुर्लभ है; अमावस्यामें गङ्गास्नानसे शतगुण, संक्रान्तिमें सहस्र गुण, चन्द्रसूर्य्यग्रहणमें लक्षगुण और व्यतीपातमें अनन्त फल होता है। विषुव संक्रान्तिमें गङ्गास्नानसे अयुत-गुण, उत्तरायण, दक्षिणायन संक्रान्तिमें द्विलक्षगुण फल होता है। सोमवारमें

चन्द्रग्रहण और रविवारमें सूर्य्यग्रहण होनेसे चूड़ामणियोग होता है, चूड़ामणि योगमें गङ्गास्नानका असंख्य फल है। हे विप्रो! स्नान, दान, जप, होम—यह गङ्गा तीरमें चूड़ामणियोगमें—जो जो करेंगे, वह समस्त ही अक्षय है। श्रद्धा-भक्तियुक्त होकर विधिपूर्व्वक गङ्गास्नान करनेसे, ब्रह्मघाती भी शुद्धि लाभ करते हैं और पातकीकी बात क्या कहना होगी? कृमि, कीट, पतङ्गादि जो जीव गङ्गातीरमें मरते हैं और जो सब वृक्ष गङ्गातीरसे गङ्गामें गिरकर विनष्ट होते हैं, वह भी परम गतिको प्राप्त होते हैं। हे हरे! गरुड़ध्वज! ज्यैष्ठ मास, शुक्लपक्ष, हस्तानक्षत्रयुक्त दशमी तिथिमें, सबुद्धिनर अथवा नारी, गङ्गातीरमें भक्तिभावसे निशामें जागरण करेंगे और दिनमें दश-विध सुगन्ध पुष्प, नैवेद्य, दशविध फल, दश प्रदीप और दशाङ्ग धूप द्वारा यथा-विधि श्रद्धापूर्व्वक दशबार गङ्गा पूजा करेंगे। दश प्रसृति सघृत तिल गङ्गाजलमें निक्षेप करेंगे; निम्नलिखित मन्त्र पाठपूर्व्वक गुड़-सक्तु मय) दशपिण्ड प्रदान करेंगे। इसके बाद 'नमः शिवायै,' अनन्तर 'नारायण्यै,' फिर 'दशहरायै,' शेषमें 'गङ्गायै,' इस मन्त्रके सर्व्वशेषमें स्वाहा और सबसे पहले प्रणव योग करेंगे, उससे सर्व्वशुद्ध विंशत्यक्षर मन्त्र होगा। पूजा, दान, जप, होम, इसी मन्त्रसे होगा। पञ्चामृत द्वारा विशोधिता गङ्गादेवीकी प्रतिष्ठाकर पूजा करेंगे। अनन्तर उनका ध्यान करेंगे।" गङ्गा चतु-र्भुजा, त्रिनेत्रा, नदनदीसेविता, उनके शरीरयष्टिमें लावण्यामृत खेलता फिरता है; उनके उत्तम चतुर्भुजमें पूर्णकुम्भ, शुक्लपद्म, वर और अभय विराजमान हैं। वह अतुल प्रभधर-सदृशी अति सौम्याकृति हैं वह चामरव्यजन-वीजिता और श्वेतच्छत्र-शोभिता हैं। वह अमृतसेकमें महीतल प्लावित करती हैं, दिव्यगन्ध उनकी चरण-युगल त्रैलोक्यवासियोंकी पूजित हैं, महर्षिगण उत्तमरूपसे उनका स्तव करते हैं। ध्यानके अन्तमें पूर्व्वोक्त मन्त्र द्वारा धूप-दीपादि उपचार द्वारा गङ्गापूजा कर प्रतिमाके आगे अक्षत और चन्दनसे निर्म्मित मेरी, तुम्हारी, ब्रह्माकी, सूर्य्यकी, हिमालयकी और भगीरथकी प्रतिमूर्त्तिकी पूजा करेंगे। अनन्तर, दश जन ब्राह्मणको आदर दशप्रस्थ तिल देंगे। पल, कुड़व, प्रस्थ, आढ़क और द्रोण यह सब परिमाण-पात्र, धान्यपरिमाणानुसारसे यह समस्त यथाक्रमसे (पहलेसे पहलेसे) चारगुण बड़ा है। मत्स्य, कच्छप, मण्डूक, मकर, आदि जलचर जन्तु, हंस, कारण्डव, बक, चक्रवाक, टिट्टिभ और सारस पक्षी-सब, शक्ति-अनुसारसे सुवर्ण, रौप्य, ताम्र अथवा पिष्टकसे निर्म्माण करके वह समस्त गन्धपुष्पसे पूजा करके पूजक, गङ्गामें उसे निक्षेप करेंगे। वित्त-शाठ्यविवर्ज्जित होकर

यथाविधि इसी प्रकार उपवासी रहकर, वक्ष्यमाण दशपापसे मुक्ति पाता है। अदत्तवस्तुका ग्रहण, अवैध हिंसा और परदारसेवा कायिक यही त्रिविध पाप हैं। परुषवचन, मिथ्या बोलना, सर्व्वप्रकार पैशुन्य और असम्बद्ध वाक्यप्रयोग, यह चतुर्विध वाचिक पाप हैं। परद्रव्यके प्रति अभिध्यान, मनमें अनिष्ट चिन्ता, और असत्य वस्तुपर नितान्त आसक्ति, यह त्रिविध मानस पाप हैं। हे गदाधर। दशजन्मार्ज्जित यह दशविध पापसे (इस कर्म्मफलसे) सद्य सद्य ही मुक्तिलाभ होता है, इसमें संशय नहीं। और (इस दशमी-कृत्य फलसे) दश पूर्व्वपुरुष और दश अधस्तन-पुरुष नरकोत्तीर्ण होते हैं। (पूजान्तमें) गङ्गाके निकट यह वक्ष्यमाण स्तव पाठ करेंगे; "शिवा शिवदा गङ्गाको वारंवार नमस्कार, हे विष्णुरूपे। तुमको नमस्कार, हे ब्रह्मस्वरूपिणि। तुमको नमस्कार, हे रुद्ररूपिणि,! तुमको नमस्कार; शङ्करि। तुमको वारंवार नमस्कार है। हे सर्व्वदेवस्वरूपिणि। भवरोगकी औषधरूपे। तुमको नमस्कार। तुम सबके ही सब रोग वैद्यश्रेष्ठा हो; तुमको नमस्कार, हे चराचरविष-विघातिनि! तुमको नमस्कार है। हे संसार-विषनाशिनि। जीवनरूपे। तुमको नमस्कार; तुम त्रितापहन्त्री, जीवनकी ईश्वरी भी, तुमको वारंवार नमस्कार है। हे शान्तिसन्तानकारिणि। शुद्धरूपे। तुमको नमस्कार है; हे सर्व्वशुद्धिविधायिनि। तुम्हारी मूर्त्ति-पापसमूहकी शत्रु है, तुमको नमस्कार है। तुम भोग-मोक्षप्रदायिनि मङ्गलदात्री हो; तुमको वारंवार नमस्कार है। हे भोगवति! तुम भोगोपभोगदायिनि हो! तुमको नमस्कार। हे मन्दाकिनि। तुमको नमस्कार; हे स्वर्गदायिनि। तुमको वारंवार नमस्कार है। हे त्रैलोक्यभूषणस्वरूपे! तुमको नमस्कार; हे त्रिपथगे! तुमको वारंवार नमस्कार; हे त्रिशुक्लसंस्थे। हे क्षमावति। तुमको वारंवार नमस्कार; हे गार्हपत्य! दक्षिण और आहवनीय नामक अग्नित्रयकी अधिष्ठानदेवि। तेजोवति। तुमको वारंवार नमस्कार है। तुम नन्दा, तुम शिवलिङ्गधारिणी हो, तुम्हारा स्वरूप सुधाधारामय है, तुमको नमस्कार; तुम विश्वमुख्या, रेवती हो, तुमको वारंवार नमस्कार; हे बृहति। तुमको नमस्कार; हे लोकधात्री! तुमको नमस्कार है। हे विश्वमित्रे। तुमको नमस्कार; हे नन्दिनि! तुम्हें वारंवार नमस्कार है। हे पृ! हे पृथ्विशिवामृते। हे निर्म्मलसलिले। हे सदृषि। (उत्तमधर्म्मरूपे) तुमको वारंवार नमस्कार है। तुम ब्रह्मादि परम देवगण और अब्रह्मादि अपर व्यक्तिवृन्द कर्तृक परिहृता भी, तुम तारा हो, तुमको वारंवार नमस्कार है। हे पाशजालच्छेदिनी! सर्व्वात्मिके! तुमको

नमस्कार, हे शान्त! वरिष्ठे! वरदे! तुमको वारंबार नमस्कार है; हे उग्रे! सुखभोगकारिणि! सञ्जीविनि! तुमको नमस्कार है। तुम ब्रह्मिष्ठा मुक्तिदायिनी और पापनाशिनी हो, तुमको नमस्कार है। हे प्रणतार्त्तिहारिणी! जगन्मातः! तुमको नमस्कार है। हे मङ्गले! तुम निखिल विपदकी शत्रु हो, तुमको वारंबार नमस्कार है। हे शरणागतदीनार्त्त-परित्राणकारिणि! हे सबकी आर्त्तहारिणि! नारायणि! तुमको नमस्कार है! हे निर्लिपे! हे दुर्गहन्त्रि! हे दक्षे! हे निर्वाणदायिनी! गङ्गे! कार्य्य कारणस्वरूपा तुमको वारंवार नमस्कार है। गङ्गे! तुम मेरे सामने रहो; गङ्गे! मेरे पीछे अवस्थान करो; गङ्गे! मेरी पार्श्ववर्त्तिनी हो; गङ्गे! तुममें मेरा स्थैर्य्य हो, हे पृथिवीस्थिते! शिवे! आदिमें कारणरूपसे, अन्तमें अवधिरूपसे और मध्यमें इस विश्वरूपसे अवस्थित हो, इसलिये तुम्हीं सब हो, तुम्हीं मूलप्रकृति, तुम्हीं परम पुरुष हो, हे गङ्गे! तुम्हीं परमात्मा शिव हो; हे शिवे! तुमको नमस्कार है। जो मनुष्य श्रद्धासे इस स्तवका पाठ करते, या श्रवण करते, वह, कायिक, वाचिक और मानसिक दशविध पापसे मुक्ति पाते हैं, रोगी रोगसे, विपन्न विपदसे, बद्ध बन्धनसे, भीत मनुष्य भयसे मुक्त होता है। (इस स्तवको पढ़ने सुननेकी फलसे) उसकी सर्व्व कामना पूर्ण होती है और परकालमें वह मनुष्य दिव्य विमानारोहणसे दिव्य स्त्रीगण कर्त्तृक वीजित होकर स्वर्गमें गमन करता है। यह लिखित स्तोत्र जिसके घरमें रहता है, उनको भी अग्निभय, चोरभीति और सर्पादिभय कभी नहीं होता। ज्येष्ठमास, शुक्लपक्ष, हस्तानक्षत्रयुक्त दशमी बुधवार योगसे त्रिविध पाप हरण करता है। दरिद्र हों या अधम हो, जो मनुष्य, पूर्व्वोक्त विधानक्रमसे यत्नपूर्व्वक गङ्गा-पूजा करके दशमी तिथिमें गङ्गाजलमें अवस्थित होकर दशबार इस स्तोत्रको पाठ करते, उन्हें भी पूर्व्वोक्त फल मिलता है। जैसी गौरी, वैसी ही गङ्गा, इसलिये गौरीपूजाकी जो विधि कीर्त्तित हुई है गङ्गापूजामें भी उसी विधिके अनुसार अनुष्ठान करना चाहिये। जैसा मैं, वैसे तुम, जैसे तुम, वैसी उमा, जैसी उमा, वैसी गङ्गा, इस चाररूपमें कुछ भेद नहीं है। जो मनुष्य हरिहरमें भेद, लक्ष्मी-दुर्गामें भेद, अथवा गङ्गादुर्गामें भेद कीर्त्तन करते हैं, वह मूढ़ बुद्धि हैं।

सप्तविंश अध्याय समाप्त ॥ २७ ॥

अष्टाविंश अध्याय।

गङ्गामहिमा।

पार्व्वतीने कहा, "नाथ! मैं आत्मसंशयापनोदनके लिये कुछ पूछनेकी इच्छा

तीरमें ब्राह्मणको दान करते हैं, हे मुने! उस धेनु और उसके बछरेके शरीरमें जितने रोम हैं, उतने सहस्र वर्ष वह व्यक्ति स्वर्गसुख भोग करता है।

अष्टाविंश अध्याय समाप्त ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंश अध्याय।

गङ्गाके सहस्र नाम।

अगस्त्यने कहा, गङ्गास्नान व्यतीत मनुष्यका जन्म विफल है; तब जिससे गङ्गा-स्नानका फल मिलता है, इस प्रकारका उपायान्तर क्या है? अशक्त, पङ्गु और आलस्यग्रस्त, दूरदेशस्थ मनुष्यगणका गङ्गा स्नान क्योंकर होगा? हे षडानन! गङ्गास्नानका फल हो, ऐसा दान, व्रत, मन्त्र, स्तोत्र, जप, अन्य तीर्थमें स्नान और देवोपासनादि कर्म्मान्तर यदि कुछ है, तो वह प्रणामपरायण मुझसे कीर्त्तन कीजिये। हे महामते! गङ्गागर्भसम्भूत! स्कन्द! सुरतरङ्गिणीकी महिमा तुमसे अधिक और कोई नहीं जानता। श्रीस्कन्दने कहा, हे मुने! इस जगतमें पुण्य-सलिलसम्पन्न बहुत सरित् सरोवर हैं, जितेन्द्रियगणका अधिष्ठित, इष्टफलप्रद, महामहिमसम्पन्न तीर्थ सभी जगह हैं; किन्तु गङ्गाके कोटि भागके एक भागकी महिमा भी उन सबमें नहीं है। अधिक क्या कहूं; हे कुम्भयोने! इस अनुमानसे ही गङ्गाके माहात्म्यको जान लो, कि स्वयं देवदेव शम्भुने, इन गङ्गाको उत्तमाङ्गमें धारण किया। लोग स्नानके समय अन्यतीर्थमें गङ्गाका जप करते हैं। विष्णु-पदी गङ्गाके सिवा पापमोचनमें समर्थ और कोई क्या कहीं है? हे ब्रह्मन्! गङ्गास्नानका फल केवल गङ्गास्नानसे ही मिलता है; आङ्गुर फलका आस्वाद, आङ्गुरमें ही पाया जाता है; और किसीमें नहीं। हे मुने! तब एक ही उपाय है, जिससे अखिल गङ्गास्नानका फल होता है, किन्तु वह अतिशय गुह्यतम है। शिवभक्त, शान्त विष्णुभक्तिपरायण, श्रद्धालु, आस्तिक और गर्भवासमुमुक्षु मनुष्यसे यही महापातकनाशन परम रहस्य विषय कहा जायगा, अन्य मनुष्यके समीप कभी किसीपर भी प्रकाशित न होगा। उस रहस्यका विषय—स्तवराजशोभन, गङ्गाका सहस्र नाम है। इससे गङ्गाकी प्रीति उत्पन्न होती है, शिवका सन्तोष बढ़ता है! यह सहस्र नाम, जप्यगणमें परम जप्य, और यह वेद उपनिषदके समान है। प्रयत्न पूर्व्वक मौनावलम्बनकर पवित्र स्थानमें सुस-ष्टाक्षरसे, पवित्रभावसे, बिना सहायताके यह सहस्र नामका जप करना होगा। "ओं गङ्गादेवीको नमस्कार, ओंकाररूपिणी अजया, अतुला अनन्ता, अमृतस्रवा, अत्यु-दारा, अभया, अशोका, अलकनन्दा, अमृता, अमला, अनाथवत्सला, अमोघा अपांयोनि,

अमृतप्रदा, अव्यक्तलक्षणा, अक्षोभ्या, अनवच्छिन्ना, अपराजिता, अनाथनाथा, अभीष्टार्थसिद्धिदा, अनङ्गवर्द्धिनी, अणिमादिगुणा, अधारा, अग्रगण्या, अलीकहारिणी, अचिन्त्यशक्ति, अनघा, अद्भुतरूपा, अघहारिणी, अद्रिराजसुता, अष्टाङ्गयोगसिद्धिप्रदा, अच्युता, अक्षुन्नशक्ति, असुदा, अनन्ततीर्था, अमृतोदका, अनन्तमहिमा, अपारा, अनन्तसौख्यप्रदा, अन्नदा, अशेषदेवतामूर्त्ति, अघोरा, अमृतरूपिणी, अविद्याजालशमनी, अप्रतर्क्यगतिप्रदा, अशेषविघ्नसंहन्त्री, अशेषगुणगुम्फिता, अज्ञानतिमिरज्योतिः, अनुग्रहपरायणा, अभिरामा, अनवद्याङ्गी, अनन्तसारा, अकलङ्किनी, आरोग्यदा, आनन्दवल्ली, आपन्नार्त्तिविनाशिनी, आश्चर्य्यमूर्त्ति, आयुष्या, आढ्या, आद्या, आप्रा, आर्य्यसेविता, आप्यायिनी, आप्तविद्या, आख्या, आनन्दा, आश्वासदायिनी, आलस्यघ्नी आपदाहन्त्री, आनन्दामृतवर्षिणी, इरावती, इष्टदात्री, इष्टा, इष्टापूर्त्तफलप्रदा, इतिहासश्रुती, ड्यार्था, इहामुत्रसुखप्रदा, इज्याशील-समि-ज्येष्ठा, इन्द्रादिपरिवन्दिता, इलालङ्कारमाला, इद्धा, इन्दिरारम्यमन्दिरा, इत्, इन्दिरादिसंसेव्या, ईश्वरी, ईश्वरवल्लभः; ईतिभीतिहरा, ईड्या, ईडनीयचरित्रभृत्, उत्कृष्टशक्ति, उत्कृष्टा, उडुपमण्डलचारिणी, उदिताम्बर मार्गा, उग्रा, उरगलोकविहारिणी, उक्षा, उर्व्वरा, उत्पला, उत्कुम्भा, (१००) उपेन्द्रचरणद्रवा, उदन्वत्पूर्त्तिहेतु, उदारा, उत्साहप्रवर्द्धिनी, उद्वेगघ्नी, उष्णशमनी, उष्णांशुसुताप्रिया, उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणी, ऊर्ज्जं वहन्ती, ऊर्ज्जधरा, ऊर्ज्जावती, ऊर्म्मिमालिनी, ऊर्द्ध्वरेताःप्रिया ऊर्द्ध्वाध्वा ऊर्म्मिला, ऊर्द्ध्वगतिप्रदा, ऋषिवृन्दस्तुता, ऋद्धि, ऋणत्रयविनाशिनी ऋतम्भरा, ऋद्धिदात्री, ऋक्स्वरूपा ऋजुप्रिया, ऋक्षमार्गवहा, ऋक्षार्च्चिः, ऋजुमार्गप्रदर्शिनी; एधिताखिलधर्म्मार्था, एका, एकामृतदायिनी, एधनीयस्वभावा, एज्या, एजिताशेषपातका, ऐश्वर्य्यदा, ऐश्वर्य्यरूपा, ऐतिह्या, ऐन्दवीद्युति, ओजस्विनी, ओषधिक्षेत्र, ओजोदा, ओदनदायिनी, ओष्ठामृता, औन्नत्यदात्री, औषध भवरोगिणां (संसार रोगियोंकी औषधस्वरूपा,) औदार्य्यचञ्चु, औपेन्द्री, औग्री, औमेयरूपिणी, अम्बराध्ववहा, अम्बष्ठा, अम्बरमाला, अम्बुजेक्षणा, अम्बिका, अम्बुमहायोनि, अन्धोदा, अन्धकहारिणी अंशुमाला, अंशुमती, अङ्गीकृतषडानना, अन्धतामिस्रहन्त्री, अन्धु, अञ्जना, अञ्जनावती, कल्याणकारिणी, काम्या, कमलोत्पल गन्धिनी, कुमुद्वती, कमलिनी, कान्ति, कल्पितदायिनी, काञ्चनाक्षी, कामधेनु, कीर्त्तिकृत, क्लेशनाशिनी, क्रतुश्रेष्ठा, क्रतुफला, कर्म्मबन्धविभेदिनी, कमलाक्षी, क्लमहरा, कृशानुतपनद्युति करुणार्द्रा, कल्याणी, कलिकल्मषनाशिनी, कामरूपा, क्रियाशक्ति, कमलोत्पलमालिनी, कूटस्था,

करुणा, कान्ता, कूर्म्मयाना, कलावती, कमला, कल्पलतिका, काली, कलुषवैरिणी, कमनीयजला, कम्रा कपर्दिसुकपर्दिगा, कालकूटप्रशमिनी, (२००) कदम्बकुसुमप्रिया, कालिन्दी, केलिललिता, कलकल्लोलमालिका, क्रान्तलोकत्रया, कण्डू, कण्डूतनयवत्सला, खड्गिनी, खड्गधाराभा, खगा, खण्डेन्दुधारिणी, खेखेलगामिनी, खस्था, खण्डेन्दुतिलकप्रिया, खेचरी, खेचरीवन्द्या, ख्याति, ख्यातिप्रदायिनी, खण्डितप्रणताघौघा, खलबुद्धिविनाशिनी, खातैनःकन्दसन्दोहा, खड्गखट्वाङ्गखेटिनी, खरसन्तापशमनी, खनिः-पीयूषपाथसां, (सुधाजलानां खनिस्वरूपा) गङ्गा, गन्धवती, गौरी गन्धर्व्वनगरप्रिया, गम्भीराङ्गी, गुणमयी, गतातङ्का, गतिप्रिया, गणनाथाम्बिका, गीता, गद्यपद्यपरिष्टुता, गान्धारी, गर्भशमनी, गतिभ्रष्टगतिप्रदा, गोमती, गुह्यविद्या, गौ, गोप्त्री, गगनगामिनी, गोत्रप्रवर्द्धिनी, गुण्या, गुणातीता, गुणाग्रणी, गुहाम्बिका, गिरिसुता, गोविन्दाङ्घ्रिसमुद्भवा, गुणनीयचरित्रा, गायत्री गिरिशप्रिया, गूढरूपा गुणवती, गुर्व्वी, गौरववर्द्धिनी, ग्रहपीड़ाहरा, गुन्द्रा, गरघ्नी, गानवत्सला, घर्म्म हन्त्री घृतवती, घृततुष्टिप्रदायिनी घण्टारवप्रिया, घोराघौघविध्वंसकारिणी, घ्राणतुष्टिकरा, घोषा, घनानन्दा, घनप्रिया, घातुका, घूर्णितजला, घृष्टपातकसन्तति, घटकोटिप्रपीतापा, घटिताशेषमङ्गला, घृणावती, घृणिनिधि, घस्मरा, घूकनादिनी, घुसृणापिञ्जरतनु, घर्घरा, घर्घरस्वना, चन्द्रिका, चन्द्रकान्ताम्बु, चञ्चदापा, चलद्युति, चिन्मयी, चितिरूपा, चन्द्रायुतशतानना, चाम्पेयलोचना, चारु, चार्व्वङ्गी, चारुगामिनी, चार्य्या, चरित्रनिलया, चित्रकृत, चित्ररूपिणी, चम्पू, चन्दनशुचम्बु, चर्च्चनीया, चिरस्थिरा, (३००) चारुचम्पकमालाढ्या, चमिताशेषदुष्कृता, चिदाकाशवहा चिन्त्या, चञ्चच्चामरवीजिता, चोरिताशेषवृजिना, चरिताशेषमण्डला, छेदिताखिलपापौघा, छद्मघ्नी, छलहारिणी, छन्नत्रिविष्टपतला, छोटिताशेषबन्धना, छुरितामृतधारौघा, छिन्नैनाः, छन्दगामिनी, छत्रीकृतमरालौघा, छटीकृत निजामृता, जाह्नवी, ज्या, जगन्माता, जप्य, जङ्घालवीचिका, जया, जनार्द्दनप्रीता, जुषणीया, जगद्धिता, जीवन, जीवनप्राणा, जगज्ज्येष्ठा, जगन्मयी, जीवजीवातुलतिका, जन्मिजन्मनिवर्हिणी, जाड्यविध्वंसनकरी, जगद्योनि, जलाविला, जगदानन्दजननी, जलजा, जलजेक्षणा, जनलोचनपीयूषा, जटातटविहारिणी, जयन्ती, जञ्जपूकघ्नी, जनितज्ञानविग्रहा, झल्लरीवाद्यकुशला, झलज्झालजलावृता, झिण्टीशवन्द्या, झङ्कारकारिणी, झर्झरावती, टीकिताखिलपाताला, टङ्किकैनोद्रिपातने, (पापपर्व्वतविदारणटङ्करूपिणी) टङ्कारनृत्यत्कल्लोला,

टीकनीव महातटा, डम्बर-प्रवहा, डीनराज-हंसकुलाकुला, डमड्डमरुहस्ता, डामरोक्त-महाण्डका, डौकिताशेषनिर्व्वाणा, ढक्कानाद-चलज्जला, ढुण्ढिविघ्नेशजननी, ढण्ढ-णितपातका, तर्पणी, तीर्थतीर्था, त्रिपथा त्रिदशेश्वरी, त्रिलोकगोप्त्री, तोयेशी, त्रैलोक्यपरिवन्दिता, तापत्रितयसंहर्त्री, तेजोबलविवर्द्धिनी, त्रिलक्ष्या, तारणी, तारा, तारापतिकरार्च्चिता, त्रैलोक्यपावनीपुण्या तुष्टिदा, तुष्टिरूपिणी, तृष्णाच्छेत्री, तीर्थ-माता, त्रिविक्रमपदोद्भवा, तपोमयी तपो-रूपा, तपस्तोमफलप्रदा, त्रैलोक्यव्यापिनी, तृप्ति, तृप्तिकृत्, तत्त्वरूपिणी, त्रैलोक्यसुन्दरी, तुर्य्या, तुर्य्यातीतपदप्रदा, त्रैलोक्यलक्ष्मी, त्रिपदी, तथ्या तिमिरचन्द्रिका, तेजोगर्भा, तपःसारा, त्रिपुरारिशिरोगृहा, त्रयी-स्वरू-पिणी, तन्वी, (४००) तपनाङ्गजभीतिनुत्, तरि, तरणिजा-मित्र, तर्पिताशेषपूर्व्वजा, तुलाविरहिता, तीव्रपापतूलतनूनपात्, दारिद्र्यदमनी, दक्षा, दुष्प्रेक्ष्या, दिव्यम-ण्डना, दीक्षावती दुरावाप्या, द्राक्षा-मधुरवारिभृत्, दर्शितानेककुतुका, दुष्ट-दुर्ज्जय-दुःखहृत्, दैन्यहृत्, दुरितघ्नी दानवारिपदाब्जजा, दन्दशूकविषघ्नी, दारिता-घौघसन्तति, द्रुता, देवद्रुमच्छन्ना, दुर्व्वा-राघविघातिनी, दमग्राह्या, देवमाता, देवलोकप्रदर्शिनी, देवदेवप्रिया, देवी, दिक्-पालपददायिनी, दीर्घायुष्कारिणी, दीर्घा, दोग्ध्री, दूषणवर्ज्जिता, दुग्धाम्बुवा-हिनी, दोह्या, दिव्या, दिव्यगतिप्रदा, द्युनदी, दीनशरण, देहिदेहनिवा-रिणी, द्राघीयसी, दाघहन्त्री, दितपातक-सन्तति, दूरदेशान्तरचरी, दुर्गमा, देववल्लभा, दुर्व्वृत्तघ्नी, दुर्व्विगाह्या, दयाधारा, दयावती, दुरासदा, दान-शीला, द्राविणी, द्रुहिणस्तुता, दैत्यदानव संशुद्धिकर्त्री, दुर्व्वुद्धिहारिणी, दानसारा, दयासारा, द्यावाभूमिविगाहिनी, दृष्टादृष्ट-फलप्राप्ति, देवतावृन्दवन्दिता, दीर्घव्रता, दीर्घदृष्टि, दीप्ततोया, दुरालभा, दण्डयित्री, दण्डनीति, दुष्टदण्डधरार्च्चिता, दुरोदरघ्नी, दावार्च्चिः, द्रव-द्रव्यैकशेवधि, दीनसन्ताप-शमनी, दात्री, दवथुवैरिणी, दरी, विदार-णपरा, दान्ता, दान्तजनप्रिया, दारिताद्रि तटा, दुर्गा, दुर्गारण्यप्रचारिणी, धर्म्मद्रवा, धर्म्मधुरा, धेनु, धीरा, धृति, ध्रुवा, धेनुदान-फलस्पर्शा, धर्म्मकामार्थमोक्षदा, धर्म्मोर्म्मि-वाहिणी, धूर्य्या, धात्री, धात्रीविभूषणा, धर्म्मिणी, धर्म्मशीला, धन्विकोटि, कृतावना, ध्यातृपापहरा, ध्येया, धावनी, धूतकल्मषा, (५००) धर्म्मधारा, धर्म्मसारा, धनदा, धनवर्द्धिनी, धर्म्माधर्म्मगुणच्छेत्री, धत्तूर-कुसुमप्रिया, धर्म्मेशी, धर्म्मशास्त्रज्ञा, धनधान्य-समृद्धिकृत्, धर्म्मलभ्या, धर्म्मजला, धर्म्मप्र-सवधर्म्मिणी, ध्यानगम्य-स्वरूपा, धरणी, धातृपूजिता, धूः, धूर्ज्जटिजटा-संस्था, धन्या, धी, धारणावती, नन्दा, निर्व्वाण-जननी, नन्दिनी, नुन्नपातका, निषिद्धविघ्ननिचया,

निजानन्दप्रकाशिनी, नभोङ्गनचरी, नुति,
नम्या, नारायणी नुता निर्म्मला, निर्म्मल-
ख्याना, नाशिनी, ताप सम्पदां, (तापसमूह-
नाशिनी,) नियता, नित्यसुखदा, नानाश्चर्य्य-
महानिधि, नदीनदसरोमाता नायिका,
नाकदीर्घिका, नष्टोद्धरणधीरा, नन्दना,
नन्ददायिनी, निर्णिक्ताशेषभुवना, निःसङ्गा,
निरुपद्रवा, निरालम्बा, निष्प्रपञ्चा, निर्ना-
शितमहामला, निर्म्मलज्ञानजननी, निःशेष-
प्राणितापहृत्, नित्योत्सवा, नित्यतृप्ता, नम-
स्कार्य्या, निरञ्जना, निष्ठावती, निरातङ्का,
निर्लेपा, निश्चलात्मिका, निरवद्या, निरीहा,
नीललोहित-मूर्द्धगा, नन्दि भृङ्गिगणस्तुत्या,
नागानन्दा, नगात्मजा, निष्प्रत्यूहा, नाक-
नदी, निरयार्णवदीर्घनौ, पुण्यप्रदा, पुण्य-
गर्भा, पुण्या, पुण्यतरङ्गिणी, पृथु, पृथुफला,
पूर्णा, प्रणतार्त्तिप्रभञ्जनी, प्राणदा, प्राणि-
जननी, प्राणेशी, प्राणरूपिणी, पद्मालया,
पराशक्ति, पुरजित्-परमप्रिया, परा
(सर्व्वोत्कृष्टा) परफलप्राप्ति, पावनी,
पयस्विनी, परानन्दा, प्रकृष्टार्था, प्रतिष्ठा,
पालनी, परा, (पूरणकर्त्री) पुराण-
पठिता, प्रीता, प्रणवाक्षररूपिणी, पार्व्वती,
प्रेमसम्पन्ना, पशुपाशविमोचिनी, (६००)
परमात्मस्वरूपा, परब्रह्मप्रकाशिनी, पर-
मानन्दनिष्यन्दा, प्रायश्चित्तस्वरूपिणी,
पानीयरूपनिर्व्वाणा, परित्राण-परायणा,
पापेन्धन-दवज्वाला, पापारि, पापनाम-
नुत्, परमैश्वर्य्यजननी, प्रज्ञा, प्राज्ञा, परा-

परा, प्रत्यक्षलक्ष्मी, पद्माक्षी, परव्योमामृत-
स्रवा, प्रसन्नरूपा, प्रणिधि, पूता, प्रत्यक्ष-
देवता, पिनाकि-परमप्रीता, परमेष्ठिकम-
ण्डलु, पद्मनाभपदार्घ्येण प्रसूता (विष्णु-
पादार्घ्य से उत्पन्ना) पद्ममालिनि, पर-
र्द्धिदा, पुष्टिकरी, पथ्या, पूर्त्ति, प्रभावती,
पुनाना, पीतगर्भघ्नी, पापपर्व्वतनाशिनी,
फलिनी, फलहस्ता, फुल्लाम्बुजविलोचना,
फालितैनोमहाक्षेत्रा, फणिलोकविभूषणा, फेन-
च्छल-प्रणुन्नैनाः, फुल्ल-कैरवगन्धिनी, फेनि-
लाच्छाम्बुधाराभा, फडुच्चाटितपातका,
फाणितस्वादुसलिला, फाण्टपथ्यजलाविला,
विश्वमाता, विश्वेशी, विश्वा, विश्वेश्वर-
प्रिया, ब्रह्मण्या, ब्रह्मकृत् ब्राह्मी, ब्रह्मिष्ठा,
विमलोदका; विभावरी; विरजा; विक्रा-
न्तानेकविष्टपा; विश्वमित्र ; विष्णुपदी;
वैष्णवी, वैष्णवप्रिया; विरूपाक्षप्रियकरी;
विभूति, विश्वतोमुखी; पाशा, वैबुधी;
वेद्या, वेदाक्षर-रसस्रवा, विद्या, वेगवती,
वन्द्या, वृंहणी, ब्रह्मवादिनी, वरदा, विप्र-
कृष्टा, वरिष्ठा, विशोधिनी, विद्याधरी,
विशोका, वयोवृन्दनिषेविता, बहूदका,
बलवती, व्योमस्था, विबुधप्रिया, वाणी,
वेदवती, वित्ता ब्रह्मविद्यातरङ्गिणी, ब्रह्मा-
ण्डकोटिव्याप्ताम्बु, ब्रह्महत्यापहारिणी,
ब्रह्मेशविष्णुरूपा, बुद्धि, विभववर्द्धिनी,
विलासिसुखदा, वैश्या, व्यापिनी, वृषारणि,
वृषाङ्कमौलिनिलया, विपन्नार्त्ति-प्रभञ्जिनी,
विनीता, विनता, ब्रध्नतनया, (७००)

क्रियान्विता, विपद्घ्नी, वाद्यप्रियणा, वेणु-श्रुति-विचक्षणा, वर्चस्करी, बलकरी, बलो-ज्झितकल्मषा, विपाप्मा, विगतातङ्का, विकल्प-परिवर्ज्जिता, वृष्टिकर्त्री, वृष्टिजला, विधि, विच्छिन्नबन्धना, व्रतरूपा, वित्तरूपा, बहुविघ्नविनाशकृत्, वसुधारा, वसुमती, विचित्राङ्गी, विभावसु, विजया, विश्ववीज, वामदेवी, वरप्रदा, वृषाश्रिता, विषघ्नी, विज्ञानोर्म्म्यंशुमालिनी, भव्या, भोगवती, भद्रा, भवानी, भूतभाविनी, भूतधात्री, भय-हरा, भक्तदारिद्र्य-घातिनी, भक्तिमुक्तिप्रदा, भेशी, भक्तस्वर्गापवर्गदा, भागीरथी, भानु-मती, भाग्य, भोगवती, भूति, भवप्रिया, भवद्वेष्ट्री, भूतिदा, भूतिदक्षिणा, भाल-लोचनभावज्ञा, भूत-भव्य-भवत्-प्रभु, भ्रान्ति-ज्ञान-प्रशमनी, भिन्नब्रह्माण्डमण्डलया; भूरिदा भक्तिसुलभा; भाग्यवद्दृष्टिगोचरा, भञ्जितोप-प्लवकुला; भक्ष्यभोज्यसुखप्रदा, भिक्षणीया; भिक्षुमाता, भावा, भावस्वरूपिणी, मन्दा-किनी, महानन्दा, माता, मुक्तितरङ्गिणी, महोदया, मधुमती, महापुण्या, मुदाकरी, मुनिस्तुता, मोहहन्त्री, महातीर्था, मधुस्रवा, माधवी, मानिनी, मान्या, मनोरथ-पथातिगा, मोक्षदा, मतिदा, मुख्या, महाभाग्यजना-श्रिता, महावेगवती, मेध्या, महा (पूज्या), महिमभूषणा, महाप्रभावा, महती, मीनच-ञ्चललोचना, महाकारुण्य-सम्पूर्णा, महर्द्धि, महोत्पला, मूर्त्तिमन्मुक्ति-रमणी, मणि-माणिक्यभूषणा, मुक्ताकलापनेपथ्या, मनोन

यननन्दिनी, महापातकराशिघ्नी, महादे-वार्द्धहारिणी, महोर्म्मिमालिनी, मुक्ता, महा-देवी, (८००) मनोन्मनी, महापुण्योदय-प्राप्या, मायातिमिरचन्द्रिका, महाविद्या, महामाया, महामेधा, महौषध, मालाधरी, महोपाया, महोरग विभूषणा, महामोह-प्रशमनी, महा (उत्सवमयी), मङ्गल-मङ्गल, मार्त्तण्ड-मण्डलचरी, महालक्ष्मी, मदोज्झिता, यशस्विनी, यशोदा, योग्या, यु-क्तात्म-सेविता, योगसिद्धिप्रदा, याज्या, यज्ञेश-परिपूजिता, यज्ञेशी, यज्ञफलदा, यजनीया, यशस्करी, यमिसेव्या, योगयोनि, योगिनी, युक्तबुद्धिदा, योगज्ञानप्रदा, युक्ता, यमाद्य-ष्टाङ्गयोगयुक्, यन्त्रिताघौघसञ्चारा, यमलोक-निवारिणी, यातायातप्रशमनी, यातना-नामकृन्तनी, यामिनीशहिमाच्छोदा, युग-धर्म्मविवर्ज्जिता, रेवती, रतिकृत्, रम्या, रत्नगर्भा, रमा, (लक्ष्मीरूपा) रति, रत्नाकरप्रेमपात्र, रसज्ञा, रसरूपिणी, रत्नप्रासादगर्भा, रमणीयतरङ्गिणी, र-त्नार्च्चि:, रुद्ररमणी, रागद्वेषविनाशिनी, रमा, (नयनमनोभिरामा) रामा, रम्य-रूपा, रोगिजीवातुरूपिणी, रुचिकृत्, रोचनी, रम्या, (लक्ष्मीरूपा) रुचिरा, रोगहारिणी, राजहंसा, रत्नवती, राजत्-कल्लोलराजिका, रामणीयकरेखा, रुजारि, रोगशोषिणी, राका, रङ्कार्त्तिशमनी, रम्या (रमणीया), रोलम्बराविणी, रागिणी, रञ्जितशिवा, रूपलावण्यशेवधि, लोक-

प्रसू, लोकवन्ध्या, लोलकल्लोलमालिनी, लीलावती, लोकभूमि, लोकलोचनचन्द्रिका, लेखस्रवन्ती, लटभा, लघुवेगा, लघुत्वहृत्, लास्यत्तरङ्गहस्ता, ललिता, लयभङ्गिका, लोकबन्धु, लोकधात्री, लोकोत्तरगुणोर्ज्जिता, लोकत्रयहिता, लोका, लक्ष्मी, लक्षणलक्षिता, लीला, लक्षितनिर्व्वाणा, लावण्या, अमृतवर्षिणी, वैश्वानरी (९००) वासवेड्या, वन्ध्यात्वपरिहारिणी, वासुदेवाङ्घ्रिरेणुघ्नी, वज्रिवज्रनिवारिणी, शुभावती, शुभफला, शान्ति, शान्तनु-वल्लभा, शूलिनी, शैशववयाः, शीतलामृतवाहिनी, शोभावती, शीलवती, शोषिताशेषकिल्बिषा, शरण्या, शिवदा, शिष्टा, शरजन्मप्रसू, शिवा, शक्ति, शशाङ्कविमला, शमनस्वसृसम्मता, शमा, शमनमार्गघ्नी, शितिकण्ठमहाप्रिया, शुचि, शुचिकरी, शेषा, शेषशायिपदोद्भवा, श्रीनिवासश्रुति, श्रद्धा, श्रीमती, श्री, शुभव्रता, शुद्धविद्या, शुभावर्त्ता, श्रुतानन्दा, श्रुतिस्तुति, शिवेतरघ्नी, शबरी, शाम्बरीरूपधारिणी, श्मशानशोधनी, शान्ता, शश्वत् शतधृतिस्तुता, शालिनी, शालि, शुभाढ्या, शिखिवाहनगर्भभृत् शंसनीयचरित्रा, शातिताशेषपातका, षड्गुणैश्वर्य्यसम्पन्ना, षडङ्गश्रुतिरूपिणी, षण्ढता-हारि-सलिला, स्त्यायन्नदनदीशता, सरिद्वरा, सुरसा, सुप्रभा, सुरदीर्घिका, स्वःसिन्धु, सर्व्वदुःखघ्नी, सर्व्वव्याधिमहौषध, सेव्या, सिद्धि, सती, सूक्ति, स्कन्दसूः सरस्वती, सम्पत्तरङ्गिणी, स्तुत्या, स्थाणुमौलिकृतालया, स्थैर्य्यदा, सुभगा, सौख्या, स्त्रीषु सौभाग्यदायिनी (जो स्त्रियोंके प्रति सौभाग्यदानशीला है), स्वर्गनिःश्रेणिका, सूक्ष्मा, स्वधा, स्वाहा, सुधाजला, समुद्ररूपिणी, स्वर्ग्या, सर्व्वपातकवैरिणी, स्मृताघहारिणी, सीता, संसाराब्धितरण्डिका, सौभाग्यसुन्दरी, सन्ध्या, सर्व्वसारसमन्विता, हरप्रिया, हृषीकेशी, हंसरूपा हिरण्मयी, हृताघसंघा, हितकृत्, हेला, हेलाघगर्व्वहृत्, क्षेमदा, क्षालिताघौघा, क्षुद्रविद्राविणी एवं क्षमा (१०००) हे कुम्भयोने! यह गङ्गा सहस्रनाम कीर्त्तन करनेसे मनुष्यको गङ्गास्नानका सम्यक् फल प्राप्त होता है। यह सहस्र नाम सर्व्वपापविनाशक, सर्व्वविघ्नविनाशक, सर्व्वस्तोत्रजपकी अपेक्षा इस स्तोत्रका जप श्रेष्ठ और सर्व्वविध पावन वस्तुका पवित्रतासम्पादक है। हे मुने! इसके श्रद्धासहित पाठ करनेसे, इष्टसिद्धि होती और चतुर्व्वर्गप्राप्ति होती है। एकबार इस स्तोत्रका जप करनेसे एक यज्ञका फल प्राप्त होता है। जो व्यक्ति सर्व्वतीर्थके स्नात, सर्व्वयज्ञके अनुष्ठाता हैं, उनका जो फल निर्द्दिष्ट है, त्रिसन्ध्या, इस स्तोत्रके पाठसे वही फल होता है। हे ब्रह्मन्! निखिल व्रत सम्पूर्णरूपसे आचरण करनेपर जो पुण्य होता है, संयतभावसे त्रिसन्ध्या यह स्तोत्र पढ़नेसे, वही फल प्राप्त होता है। हे मुने! चाहे किसी जलाशयमें स्नान करनेके समय जो व्यक्ति यह स्तव पढ़ेगी, त्रिपथ-